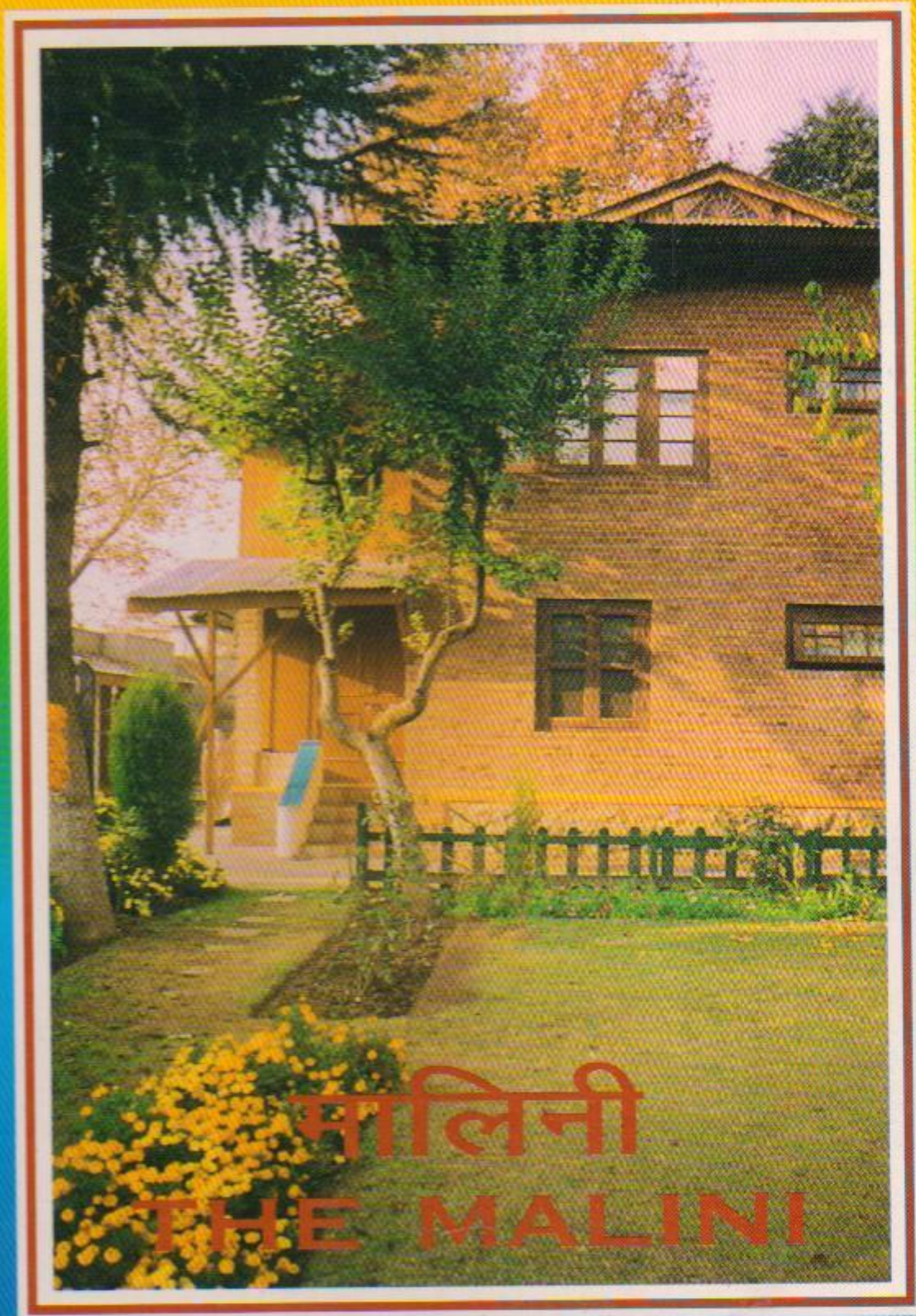


APRIL & JULY, 2004



ISHWAR ASHRAM TRUST

ISHBER (NISHAT), SRINAGAR, KASHMIR



मालिनी THE MALINI

Abhinavagupta about Mālīnī

यन्मयतयेदमखिलं, परमोपादेयभावमभ्येति।

भवभेदास्त्रं शास्त्रं, जयति श्रीमालिनी देवी॥

*Śrī Mālīnī Devī is ever victorious. In union
with her all the treatises of non-dualistic
order achieve the nature of divine potency.*

T.A.A. XXXVII

ISHWAR ASHRAM TRUST

ISHBER (NISHAT), SRINAGAR, KASHMIR

Board of Trustees :

Sri Inderkrishan Raina

(Secretary/Trustee)

Sri Samvit Prakash Dhar

Sri Brijnath Kaul

Sri Mohankrishan Wattal

Editorial Board :

Sushri Prabhadevi

Prof. Nilakanth Gurtoo

Prof. Makhanlal Kukiloo

Sri Somnath Saproo

Publishers :

Ishwar Ashram Trust

Ishber (Nishat), Srinagar, Kashmir

Tel.: 0194-2461657

Head Office :

Ishwar Ashram

Ishber (Nishat), Srinagar, Kashmir

Tel.: 0194-2461657

Administrative Office :

Ishwar Ashram Bhawan

2-Mohinder Nagar

Canal Road

Jammu Tawi - 180 016

Tel.: 2501199, 2555755

Delhi Office :

Ishwar Ashram Bhawan

R-5/D Pocket, Sarita Vihar, New Delhi - 110 044

Tel.: 26958308, 26974977, 26943307

April and July 2004 issue (combined)

Price : Rs. 25.00

Yearly subscription : Rs. 100.00

© Ishwar Ashram Trust

Produced on behalf of Ishwar Ashram Trust

by Paramount Printographics, Daryaganj, New Delhi-2. Tel 2328-1568, 2327-1568

ॐ नमः परमसंविद् चिद्वपुषे
विषय सूची : Contents

संपादक की लेखनी से		4
01. Śiva Sūtras	Īśvara Svarūpa Svāmī Lakṣmaṇa joo Mahārāja	8
03. Advaita Principle In Kashmir Saivism	Dr. B.N. Pandit	15
02. Spanda	Shri Mark SG Dy Czkowski	18
04. Swamiji And Abhinavagupta	Dr. Bettina Baumer	24
05. Truth Is A Pathless Land	Shri J. Krishnamurti	26
06. God Incarnate	Shri Arvind Shah	30
06. अतीतमंथन	ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्ष्मण जू महाराज का वचनामृत	31
07. पांचरात्रागम में मातृका विमर्श	डा० शीतला प्रसाद पाण्डेय	37
08. अनुभव, स्मृति, अपोहन और प्रत्यभिज्ञा	डॉ० वीणा कुमारी	42
10. From Ashram Desk	Administrative Office	46

संपादक की लेखनी से (अप्रैल - जुलाई 2004 का संयुक्त अंक)

मालिनी का प्रस्तुत अंक जनवरी 2004 के अंक के प्रकाशन के पश्चात् पाठकों के हाथों में रखते हुए प्रसन्नता हो रही है। प्रस्तुत अंक अप्रैल और जुलाई 2004 का संयुक्त अंक है। प्रकाशन प्रतीक्ष्य पाठक वर्ग से हम क्षमा प्रार्थी हैं कि कई कारणवश हम पिछले दो अंक समय पर प्रकाशित न कर सकें। कई प्रशासनिक आदेश प्रकाशन कार्य में वेताल बनकर आ टपके तथा ट्रस्ट के आदरणीय सदस्यों के कुछेक सुझावों को क्रियान्वयन करने में विलम्ब होने के कारण तथा अन्य कई रणनीतियों को अपनाने में यथा संभव अस्तित्व के परिणामस्वरूप भी अस्तोन्मुख सूर्य की लम्बीच्छाया की तरह विलम्ब की छाया बढ़ती गई। अस्तु ! विलम्ब की घड़ियां भी कभी कभार स्फूर्तिवर्धक होती हैं। हमें आशा है कि आप सज्जनों का सहयोग सदा हमारे साथ रहेगा और आप सत्पुरुषों की सद्गुरुभक्ति का अजस्र शीतल प्रवाह हमारे तापों शापों भ्रान्तियों और वैमनस्य को मिटाने में रामबाण की तरह अचूक होगा। यह सत्य है कि हमारे जितने भी कर्म हैं उनका होना अथवा न होना सद्गुरु इच्छा के अधीन है। हम केवल निमित्तमात्र हैं, सद्गुरु महाराज की स्वरूप भागीरथी ही हम जैसे तुच्छ प्राणियों के संकल्प कलंक पंक को निर्मल करने में सशक्त हैं। जब तक हम इस निर्मलता को संजोये रखेंगे तब तक किसी भी प्रकार की छाया का हमारे मन मस्तिष्क पर प्रभाव नहीं पड़ेगा और हम अपने मन मन्दिर में सद्गुरु महाराज की आनन्दमयी दिव्यमूर्ति का ध्यान कर करके रात दिन आनन्दमग्न रहेंगे। हमारी बुद्धि में ज़रा भी भटकाव न आये, सद्गुरु महाराज की इस कृपा के हम निरन्तर अभिलाषी हैं।

यहां इस बात का उल्लेख करना आवश्यक है कि मालिनी का प्रचार-प्रसार हम उस दृढ़निष्ठा नहीं कर सकें जैसा हमें करना चाहिए था। अपनी ओर से हमारे मन में सदा यह कसक उठती है कि कहीं न कहीं हममें भटकाव है जिसके परिणामस्वरूप मालिनी के उद्यान का आंगन सिमटने लगा है। यह चिन्तन प्रणाली भी मालिनी के यथा समय प्रकाशन में विलम्ब का कारण बनी। “मालिनी के प्रकाशन में यद्यपि शतशः हानि का जोखिम भी मुझे उठाना पड़ेगा तो मैं प्रकाशन में किसी प्रकार की कोताही नहीं करूंगा” ट्रस्ट के आदरणीय सचिव श्री इन्द्रकृष्ण रैना के इस कथन ने विलम्ब में संजीवनी का काम किया और प्रकाशन में स्फूर्ति आई। और तो और डाक व्यय का भार आये दिन बढ़ता जाता है तथा पांच रुपये से भी अधिक सम्प्रेषण शुल्क प्रतिमालिनी पर आने लगा है। इस अकारण व्यय को सीमित करने के लिए सोच विचार के पश्चात् मालिनी के नाम में पारिभाषिक तबदीली लाना आवश्यक हो उठा, क्योंकि मालिनी नाम से दक्षिण भारत में किसी पत्रिका का प्रकाशन इस समय हो रहा है। अतः पंजीकरण नियमों को ध्यान में

रखकर आगामी अंक से इसके नाम में हमें बदलाव लाने का साहस करना पड़ेगा और मालिनी के स्थान पर 'मातृका-मालिनी' रखकर "रजिस्टार दिल्ली पंजीकरण कार्यालय" में इसे पंजीकृत करके डाकव्यय के भार से छूट मिलने के लिए प्रार्थना पत्र देना पड़ेगा। हमें आशा है कि आप इस कार्य में हमें हतोत्साह नहीं करेंगे।

यह प्रसन्नता की बात है कि हमारा दिल्ली स्थित सरिता विहार आश्रम, कई वर्षों के निरन्तर निर्माण कार्य के पश्चात् साकार हो उठा। इस आश्रम की संरचना भारत के उल्लेखनीय आश्रमों के आकार-प्रकार के आधार पर हुई, यह हमारे लिए गौरव की बात है। जिन महानुभावों दानवीरों और कर्मठ महापुरुषों ने मनसा वाचा कर्मणा इस सिद्ध-पीठ के निर्माण में अनन्य सहयोग दिया, वह अकथनीय है। सद्गुरु महाराज इन महापुरुषों की सारी लौकिक व पारलौकिक कामनायें सफल करें।

आश्रमेतर

कश्मीर शैवदर्शन प्रचार विषयक गतिविधियां :

1. कश्मीर शैवदर्शन के प्रचार और प्रसार निमित्त विश्वनाथपुरी वाराणसी में "त्रिकदर्शन न्यास" की देख रेख में विगत मार्च मास में ग्यारह दिवसीय कार्यशाला और शैवदर्शन सम्बन्धी विषयों पर भाषण माला का आयोजन हुआ। ईश्वरस्वरूप महाराज की जीवनचर्या तथा शैवदर्शन के क्षेत्र में उनके योगदान पर मेरे प्रपत्रों का सारे अन्तर-राष्ट्रीय विद्वानों ने हार्दिक स्वागत किया। सद्गुरु महाराज के चरण कमलों में बैठकर भंवरा बनके जिस मधु की मैंने उड़ेला था उसकी भनक ने सारे सुविख्यात विद्वानों को उस समय आकर्षित किया जब मैंने उन्हें श्री क्षेमराजकृत प्रत्यभिज्ञा हृदय की व्याख्या सद्गुरु महाराज से प्राप्त शिक्षा के आधार पर की। सद्गुरु महाराज के महात्म्य से भावाभिभूत हो के वे अनिर्वचनीय रसानन्द से चमत्कृत हुए।

2. विगत मार्च मास में जम्मू में (Himalayan Research and Cultural Foundation, New Delhi) की देखरेख में केन्द्रीय मानव संसाधन मंत्रालय की ओर से द्विदिवसीय राष्ट्रीय विचार गोष्ठी कार्यशाला व प्रदर्शनी का, संस्था सचिव डा० वारिकू की अध्यक्षता में क्रियान्वयन हुआ। 'कश्मीर शैवदर्शन की महत्ता आधुनिक युग के परिप्रेक्ष्य में' लिखा मेरा प्रपत्र विचार विनिमय का प्रधान साधन बना। मेरे लेख के आधारभूत सद्गुरु महाराज की अलौकिक विद्वत्ता से सभी श्रोतागण हतप्रभ हुए।

3. जम्मू में ही अप्रैल मास के आरम्भ में शारदा सांस्कृतिक संगठन की ओर से प्रतिष्ठित विद्वान् डा० बी. एल. कौल की अध्यक्षता में प्रथम बार त्रिदिवसीय विचार गोष्ठी तथा पत्र वाचन का कार्यक्रम हुआ। ज्योतिषालंकार श्री ओमकारनाथ शास्त्री के तत्त्वावधान में राज्यभर के प्रतिष्ठित मनीषियों ने इसमें भाग लिया। हमारी संस्कृति का महत्त्वपूर्ण अंक होने के नाते कश्मीर शैवदर्शन पर भी इसमें विशेष मन्थन हुआ। कश्मीर

शैवदर्शन में प्रत्यभिज्ञा का महत्त्व यह उस लेख का शीर्षक था जिस पर मैंने प्रकाश डालकर सभी श्रोताओं को सद्गुरु महाराज ईश्वर स्वरूप के वैदुष्य तथा चमत्कार रस से आप्लावित किया।

4. मई मास में भगवान् गोपी नाथ जी आश्रम की ओर से इस्कान टेम्पल" में महत्त्वपूर्ण विद्वत् गोष्ठी का आयोजन हुआ। जिसमें उत्तर भारत के सुविख्यात मनीषियों ने भाग लिया। "कश्मीर शैवदर्शन में यम-नियम" सम्बन्धी लेख में मैंने सद्गुरु महाराज ईश्वर स्वरूप के विचारों को अपनी मातृभाषा में प्रस्तुत किया। सद्गुरु महाराज की दी हुई अहिंसा की विस्तृत व्याख्या ने सभी उपस्थित बन्धुओं को मंत्रमुग्ध किया और "मांस खाना पाप" है इस गुरु वाक्य को वेदवाक्य की तरह सबों ने सराहा और सकारात्मक सहयोग देने की ठानी।

अस्तु ! इस वर्ष कश्मीर शैवदर्शन के प्रचार प्रसार विषयक गतिविधियों से हमें सन्तुष्ट तो होना चाहिए, पर सुविस्तृत प्रसार का बीड़ा उठाने के लिए ईश्वर आश्रम परिवार को भी कटिबद्ध होना चाहिए। नये वर्ष के प्रारम्भ से ही हमें शैव दर्शन सम्बन्धी कार्यक्रमों का लेखा जोखा तैयार करके वर्षभर के लिए एक सुनिश्चित योजना का क्रियान्वयन करना चाहिए। ईश्वर आश्रम के कर्णधार ईश्वरस्वरूप सद्गुरु महाराज की छवि देश विदेश में जिस रूप में उजागर हो रही है उस छवि के सामने कहीं हम हतप्रभ न होवें इस बात का ईश्वर आश्रम के प्रत्येक सदस्य को ध्यान रखना होगा, क्योंकि देश विदेश के लिए ईश्वर-आश्रम आदर्श हैं।

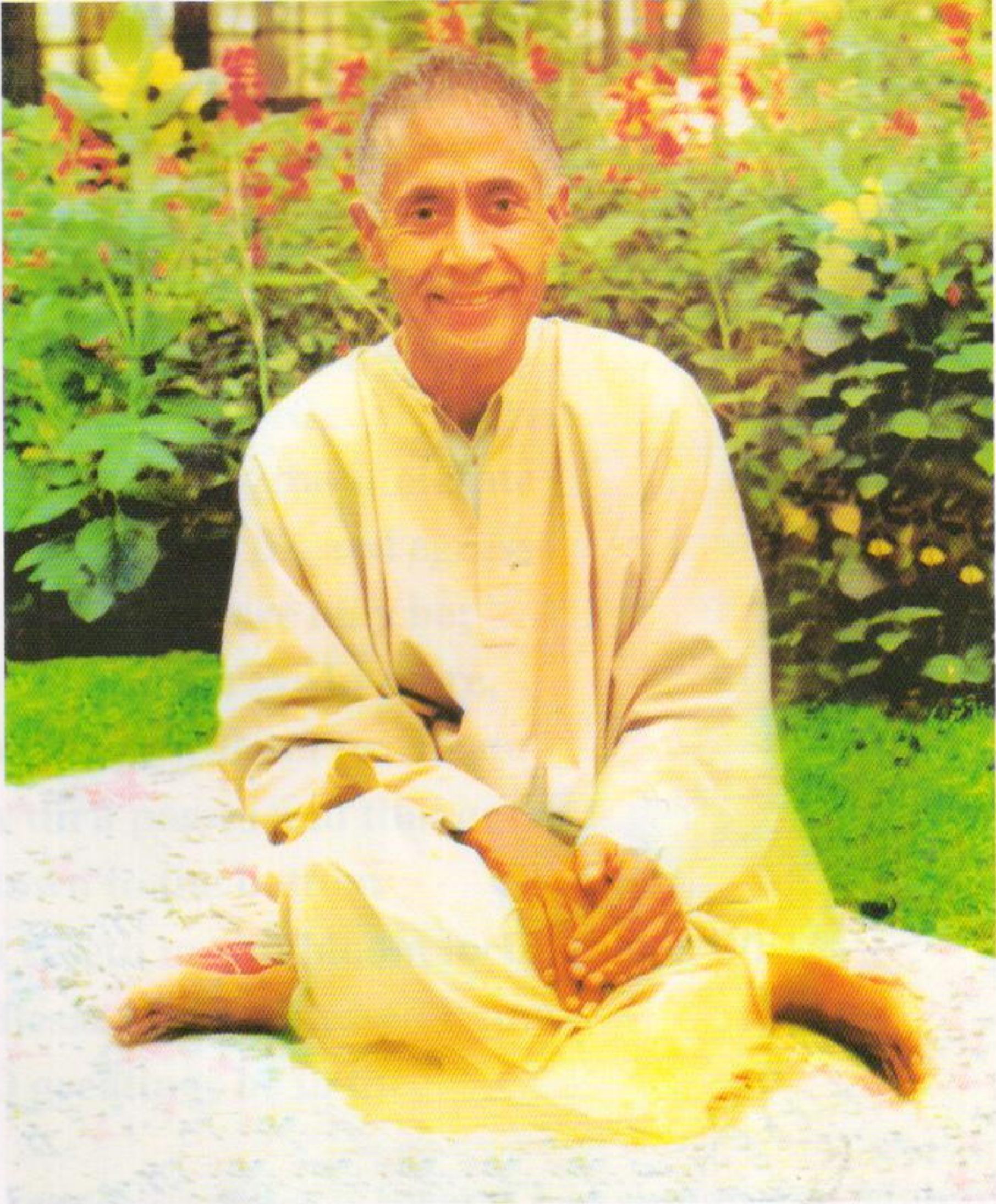
ईश्वर आश्रम श्री नगर के प्रधान केन्द्र के साथ साथ सद्गुरु महाराज की जन्म जयन्ती पर इस वर्ष पहिली बार दिल्ली के सरित विहार के नव निर्मित भवन परिसर में भी भव्य यज्ञ का आयोजन हुआ, जिसमें असंख्य भक्तों, शिष्यों और गुरु प्रेमियों ने सहर्ष भाग लेकर रातभर जागरण करके अपने को कृतकृत्य किया। इस जयन्ती पर स्थान स्थान पर इसी प्रकार के यज्ञानुष्ठान हों तो वह सद्गुरु महाराज की अलौकिक कृपा का प्रवर्षण होगा।

मालिनी का यह उद्यान सदा सुविकसित और शाद्वल रहे, यही सद्गुरु महाराज की दिव्य कृपा होगी। सद्गुरु महाराज सभी साधकों शिष्यों व प्रेमियों को सदा सद्बुद्धि से सुशोभित रखें, यही एकमात्र प्रबल इच्छा है।

जय गुरुदेव

— प्रो. मखनलाल कुकिल

श्री ईश्वरस्वरूप लक्ष्मण जू महाराज



आविर्भावदिवस
9-5-1907

महासमाधिदिवस
27-9-1991

**There is a point twixt
sleep and waking
Where thou shalt be
alert without shaking
Enter into the new world
when forms so hideous pass
They are passing –
endure, do not be taken by the dross
The pulls and the pushes
about the throttle
all those shalt thou tolerate
Close all ingress and egress
Yawnings there may be;
Shed tears crave implore,
but thou will not prostrate
A thrill passes and that goes
down to the bottom
it reseth may it bloom forth, that is Bliss
Blessed Being Blessed Being
O greatings be to thee**

Swami Lakshman Joo Maharaj

ŚIVA SŪTRAS

Vimarśinī Sanskrit Commentary of Śrī Kṣemarāja

Īśvara Svarūpa Svāmī Lakṣmaṇa joo Māharāja

(Continued from last issue of January 2004)

न चैवं स्वशक्ति निर्मित भूत भाव शरीरवतोऽस्य जन्मादिबन्धः कश्चिदित्याह-
स्वशक्तिनिर्मित- created by his own independent way of चैतन्य, अस्य -
by such a yogi, भूत शरीर - gross elementary body in wakeful state,
भावशरीरवतः - subtle body 'पुर्यष्टक' or dreamless or dreaming state, न चैवं
जन्मादिबन्धः कश्चित्- there is no bondage of birth and death, इत्याह - this is
said in the following sūtra-

विद्याऽविनाशे जन्मविनाशः॥ १८॥

(Vidyāvināśe Janmavināśah)

When the supreme knowledge is well established in an uninterrupted way, the pangs of recurring births and deaths are avoided for good.

प्रोक्तायाः सहजविद्याया अविनाशे- सततोन्मग्नतया स्फुरणे, जन्मनः- अज्ञान
सहकारिकर्म हेतुकस्य दुःखमयस्य देहेन्द्रियादि समुदायस्य नाशो-विध्वंस संपन्न एव।

प्रोक्तायाः- as already said, सहजविद्यायाः when this pure knowledge of
consciousness, अविनाशे सततोन्मग्नतयास्फुरणे- is established in continuity.
जन्मनः- then जन्म is gone for ever, here जन्म means मरण - death also, अज्ञान
सहकारि कर्म हेतुकस्य-जन्म (birth) is that action which is attached with
ignorance, दुःखमयस्य = full of pain etc. देहेन्द्रियादि समुदायस्य - by that action
body of organs etc. take place, नाशो विध्वंसः संपन्न एव - when that action is
over then birth etc. also is over. यदुक्तं श्री कण्ठयाम् - as is said in Śrī kaṇṭhī
Śāstra:

सप्रपञ्चं परित्यज्य हेयोपादेय लक्षणम्।

तृणादिकं तथा पर्णं पाषाणं सचराचरम्॥

शिवाद्यवनि पर्यन्तं भावाभावोपबृंहितम्।

सर्वं शिवमयं ध्यात्वा भूयो जन्म न प्राप्नुयात्॥

सप्रपञ्चं- along with its diversity, परित्यज्य- one who has discarded this,
हेयोपादेय लक्षणं - perception this is right and this is wrong, तृणादिकं - the
blades of grass, तथा - and पर्ण - leaves, पाषाणं - rocks, सचराचरं - with

animate and inanimate, शिवादि - right from Śiva to अवनि पर्यन्तं - the element पृथिवी, भावाभावोपबृंहितं - existant objects and non existant objects, सर्व शिवमयं ध्यात्वा- one who realizes that all are one with lord Śiva, भूयो जन्म न प्राप्नुयात् - he never gets life and death again. श्री स्वच्छन्दे - in Svachchanda Tantra also it is said:-

स्वनिर्वाणं परं शुद्धं गुरुपारम्परागतम्।

तद्विदित्वा विमुच्येत गत्वा भूयो न जायते॥

तत् स्वनिर्वाणं परं शुद्धं विदित्वा - when one is established in one's own consciousness गुरुपारम्परागतं - which is being realized by successive teachings of masters, विमुच्येत - he becomes free, गत्वा भूयो न जायते - and does not come again, he is free from the repeated births and deaths.

श्री मृत्युजित्यपि - in नेत्र तन्त्र (Netra Tantra) also it is said :-

तत्त्वत्रय विनिर्मुक्तं शाश्वतं त्वचलं ध्रुवम्।

दिव्येन योगमार्गेण दृष्ट्वा भूयो न जायते॥ इति॥

दिव्येन योग मार्गेण - by adopting the divine yogapath, शाश्वतं त्वचलं ध्रुवं - when one experiences the eternal element, तत्त्वत्रयविनिर्मुक्तं - free from three fold states of being, दृष्ट्वा भूयो न जायते - he gets liberated and does not come into the cycle of repeated births and deaths.

तत्त्वत्रय means आत्मतत्त्व, विद्या तत्त्व and शिवतत्त्व or चित्तविश्रान्ति, चित्तसंबोध and चित्तप्रलय।

यदा तु शुद्धविद्यास्वरूपं अस्य निमज्जति तदा-

When, on the contrary, such a yogi dives by way of शांभव or शाक्तोपाय yogic way his own form of pure knowledge of his real being is subisided, for him:-

कवर्गादिषु माहेश्वर्याद्याः पशुमातरः॥ १९॥

(Kavargādiṣu māheśvaryādyāḥ paśu mātaraḥ)

When the awareness of God-Consciousness slackens a bit, the universal Energy disintegrates into innumerable individual energies to carry one away from the kingdom of universality.

In this Śūtra, the world of letters words and sentences is meant by the कवर्गादिषु। In these three the eight energies of lord Śiva namely ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही इन्द्राणी, चामुण्डा and योगीश्वरी are the mothers or rulers

of beasts पशुमातरः। The beasts are ignorant human beings. The five senses and the अन्तःकरणत्रय is the objective field upon which these eight mothers rule the ignorants

अधिष्ठात्र्यो भवन्ति इति शेषः-

Kṣemrāja says that this above said line must be added to this śūtra. It means that these mothers take charge of holding them. In Tantras also it is said:-

या सा शक्तिर्जगत् धातुः कथिता समवायिनी।

इच्छात्वं तस्य सा देवि सिसृक्षोः प्रतिपद्यते।

सैकापि सत्यनेकत्वं यथा गच्छति तत् शृणु॥

देवि- O dear parvati, या सा शक्तिः- That supreme energy of absolute independence, समवायिनी- that is always adjusted, जगत् धातुः- with the creator of universe कथिता- said, सिसृक्षोः- when he wants to become manifested, तस्य- for him, सा- that स्वातन्त्र्यशक्ति इच्छात्वं प्रतिपद्यते- is transformed in to the shape of will of Lord Śiva सैकापि सति- that energy even if being one with Lord Śiva, अनेकत्वं यथागच्छति- how she takes many forms तत् शृणु- listen to that.

एवं एतत् इति ज्ञेयं नान्यथेति सुनिश्चितम्॥

ज्ञापयन्ती जगत्त्र ज्ञानशक्तिः निगद्यते॥

एवं एतत् इति ज्ञेयं- when that energy of will perceives that what is to be desired नान्यथेति- not otherwise, जगत्त्र- in this world, सुनिश्चितं ज्ञापयन्ती- what is the desired and what is not to be desired making this clear, truly, ज्ञानशक्तिः निगद्यते- that energy is said as energy of knowledge.

एवं भूतं इदं वस्तु भवतु इति यदा पुनः।

जाता तदैव तत् वत् कुर्वती अत्र क्रियोच्यते॥

पुनः- then, यदा- when that ज्ञानशक्तिः energy of knowledge एवं भूतं इदं वस्तु भवतु- wants that desire to be fulfilled with this attractive shape, तदैव then तत्त्वतः like that, कुर्वती doing जाता अत्रक्रिया उच्यते- that ज्ञानशक्तिः energy of knowledge is called as energy of action क्रियाशक्तिः।

एवं सैषा द्विरूपापि पुनर्भेदैरनन्तताम्।

अर्थोपाधिवशात् प्राप्ता चिन्तामणिरिवेश्वरी॥

एवं- thus, सैषा- this energy of will which is the ईश्वरी-स्वातन्त्र्य शक्ति absolute independence of Lord Śiva चिन्तामणिरिव- is just like a particular stone namely चिन्तामणिः द्विरूपापि- having two forms as the energy of knowledge and the energy of action, अर्थोपाधिवशात् -it takes formation of everything that is put in front of it (चिन्तामणि stone) similar is the case of Lord Śiva, पुनर्मेदैरनन्ततां प्राप्ता- what ever absolute desire comes in the way she becomes same or one with that energy of Lord Śiva and becomes many.

तत्र तावत् समापन्न मातृभावा विमिद्यते।

द्विधा च नवधा चैव पञ्चाशत्वा च मालिनी॥

तत्रतावत् समापन्न मातृभावा- the first formation she takes is the मातृकाचक्र- the wheel of the class of letters beginning from “अ” to “क्ष”। मालिनी- this garland of letters विभिद्यते द्विधा- has become two fold च नवधा- and mine fold, चैव- and पञ्चाशत् fifty fold.

बीजयोन्यात्मकात् भेदात् द्विधा बीजं स्वरामताः।

कादिभिश्च स्मृता योनिः नवधा वर्ग भेदतः॥

In मालिनी- the garland of letters, द्विधा- there are two classes बीज योन्यात्मकात् भेदात्- one is बीज and another is योनिः, बीजं स्वराः मताः- the germ बीज is named as स्वराः- vowels, कादिभिश्च स्मृता योनिः- and basis योनिः is named as the class of consonants beginning from “क” to “क्ष”, नवधा वर्ग भेदतः- having nine forms “अ” to “क्ष” Thus two told class nine fold class and fifty fold class of मालिनी is adopted by स्वातन्त्र्यशक्तिः to explain it from अ to विसर्ग are 16 vowels it is first term of nine forms 2nd form is कवर्ग (क-ङ) 3rd form is चवर्ग (च to ज) 4th form is टवर्ग (ट - ण) 5th form is तवर्ग (त - न) 6th form is पवर्ग (प - म) 7th form is य वर्ग (य - व) 8th form is शवर्ग (श - ह) and ninth form is क्ष।

बीजं अत्र शिवः शक्ति योनिरित्यभिधीयते।

वर्गाष्टक विभेदेन माहेश्वर्यादि चाष्टकम्॥

बीजमत्रशिवः- here this gem is Lord Śiva and शक्तियोनिः इति अभिधीयते-स्वातन्त्र्यशक्ति is योनिः- basis of that germ. वर्गाष्टक विभेदेन- there eight वर्ग- classes from क- to क्ष are governed by the eight mothers

माहेश्वर्याद्यष्टकं namely माहेश्वरी, ब्राह्मी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, चामुण्डा and योगेश्वरी these are called पशुमातरः because they rule the beasts-the ignorant beings.

प्रतिवर्णविभेदेन शतार्ध किरणोज्ज्वला।

रुद्राणां वाचकत्वेन तत्संख्यानां निवेशिता॥

प्रति वर्ण विभेदेन- take each letter separately शतार्ध किरणोज्ज्वला- they become fifty fold letters of effluent energy, रुद्राणां वाचकत्वेन तत्संख्यानां निवेशिता। these fifty letter correspond to fifty रुद्र, when we count these fifty letters in subjective field and objective field separately, they become one hundred Rudras.

इति श्री मालिनी विजय निरूपित नीत्या by the explanation given in the Mālinīvijaya Tantra पारमेश्वरी- the supreme energy of Lord Śiva is परावाक्- transcendental speech, प्रसरन्ती- descends to the objective field, इच्छा ज्ञान- क्रिया रूपतां श्रित्वा- she assumes the terms of energy of will (इच्छा शक्ति) energy of knowledge (ज्ञान शक्ति) and energy of action (क्रिया शक्ति) successively बीज योनि वर्ग वर्ग्यादिरूपा शिव शक्ति माहेश्वर्यादि वाचक आदि क्षान्तरूपां मातृकात्मतां श्रित्वा, सर्व प्रमातृषु अविकल्पक सविकल्पक तत् तत् संवेदनदशासु- After words she takes the form of बीज vowels, योनि- the consonants, वर्ग- eight classes, वर्ग्यादिरूपा- and the holders etc. of the classes these are, शिव शक्ति- Śiva and शक्ति his energy माहेश्वर्यादि वाचक- the great eight mothers आदि क्षान्तरूपां- from अ to क्ष, मातृकात्मतां श्रित्वा- having assumed the form of मातृका the wheel of letters, सर्वप्रमातृषु- in all beings अविकल्पक- without thoughts, सविकल्पक- with thoughts तत् तत् संवेदन दशासु- in those particular conditions of actions (To explain it there are two ways to observe this मातृका the garland of letters, one is सविकल्प way and another is निर्विकल्प way) अन्तः परामर्शत्मना the flow of consciousness in its own nature स्थूल सूक्ष्म शब्दानुवेधनं विदधाना- स्थूल- means सविकल्प way and सूक्ष्म means निर्विकल्प way शब्दानुवेधनं विदधाना- examining the meaning of the sounds of these letters, वर्ग- eight classes वर्ग्यादि- the holders of the classes देवताधिष्ठानादि द्वारेण- eight mothers who govern these ignorant beings who create in their minds sometimes स्मय- wonder हर्ष- sometimes joy भय-

sometimes fear, राग- sometimes attachment, द्वेषादि- sometimes jealousy etc. प्रपंचं- all the things प्रपंचयन्ती that happen in this world but that असंकुचित- who is never limited, स्वतन्त्र- always free, चित् घन स्वरूपं आवृण्वाना- and filled with consciousness संकुचित पर तन्त्र देहादि मयत्वं आपादयति- is covered by limited energies and they become the object and are played by this limited way of being. To explain more निर्विकल्प way of observing sounds etc. is felt by Yogis. For example when Yogi hears the words "Your father is dead.) He hears your which are letters "Y" "O" "U" "R" and nothing else and father which are the letters "f" "a" "t" "h" "e" "r" what meaning has come out from these sounds. Nothing because it is all divine. This is the way of understanding called as निर्विकल्प with this understanding you won't weep rather you will see that this is only the flow of consciousness in its own nature 'y' 'o' 'u' 'r' 'f' 'a' 't' 'h' 'e' 'r' these have no meaning. They are only letters. To get meaning we have to attach our individual consciousness. When this individual consciousness is not attached to these letters then we become one with Lord Śiva. This is called the way of निर्विकल्प realization. With this understanding we won't weep or become joyous or feel fear etc. But सर्विकल्प way of understanding is that when you act according to dictation and take the letters in ordinary form and after hearing the news of father's death will weep, cry and become wonder-struck. This kind of observation is meant for ignorant beings who are ruled by those eight mothers.

यदुक्तं श्रीतिमिरोत्घाटेऽपि:- as is said in Timirodghāta Tantra:-

करन्ध्रचिति मध्यस्था ब्रह्मपाशावलम्बिका।

पीठेश्वर्यो महाघोरा मोहयन्त्यो मुहुर्मुहुः॥

करन्ध्र- in Brahmarandhra चितिमध्यस्था the divine mother, the supreme energy of Lord Śiva, is seated, and पीठेश्वर्यः- who are eight other mothers have created a circle around her, ब्रह्मपाशावलम्बिका:- they have in their hands that kind of chain which bind everyone and carry away them from unlimitedness and entangle them with limitedness महाघोरा- these fearful energies. मोहयन्त्यो मुहुर्मुहुः- create disturbances and ignorance again and again.

इति पूर्वमपि संवादितं— this is already explained before in 1st awakening.

ज्ञानाधिष्ठानं मातृका— this three fold bondage is attributable to and commanded by the universal mother while she remains unknown. Hence the field of ignorance comes into existence through her and not through any other agency.

इति सामान्येन उक्तं— this has been explained in general.

इदं तु प्राप्त तत्त्वोऽपि प्रमाद्यन्— now a yogi who has realized his own nature, प्रमाद्यन्— allows his awakeness to go astray माहेश्वर्यादिभिः— by माहेश्वरी etc. eight mothers, पशुजन अधिष्ठातृ भूताभिरपि— who are the rulers of the beasts-ignorant people, शब्दानुवेधद्वारेण मोह्यते— he is oppressed with the delusion, by the penetration of the sounds of letters words and sentences इत्याशयेन इति विशेषः— this is the real meaning of this sūtrā.

(to be continued)



सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।

स भूमिं विश्वतो वृत्वा अत्यतिष्ठत् दशांगुलम्॥

अर्थात्— अव्यक्त महत् आदि से विलक्षण चेतन, श्रुतियों में प्रसिद्ध, सब प्राणियों की समष्टि रूप, ब्रह्माण्डरूप देशयुक्त विराट्, असंख्य सिरों से युक्त हैं, अर्थात् जितने सब प्राणियों के सिर हैं वे सब उनके सिर में ही सीमित होने से वे अनन्त सिरों से सहित हैं। सहस्र नेत्रों वाले होने से सहस्राक्ष सब ज्ञानेन्द्रियपूर्ण हैं। हजारों चरणों वाला अर्थात् कर्मेन्द्रिय संपन्न होने से यह सहस्रपात् है। वह पुरुष ब्रह्माण्ड को या पंचभूतों को सब ओर से व्याप्त करके दस अंगुल परिमित देश को अतिक्रमण करके स्थित हुआ है। दस अंगुल ब्रह्माण्ड का उपलक्षण है अथवा नाभि के स्थान से दस अंगुल अतिक्रमण करके हृदय में स्थित है।

Advaita Principle in Kashmir Saivism

– Dr. B. N. Pandit

Several types of *advaita* have been established in several schools of Indian philosophy. The *advaita* of some *vaiṣṇava* schools of thought is a special type of pantheism in accordance with which God alone becomes himself all matter, each mind and each finite being. *Vaiṣṇavas* do not establish God as an absolute and transcendental reality lying beyond all phenomena and everything phenomenal. God for them is, more or less, a personal God with whom a permanent contact is established in the state of liberation.

The *advaita vedantis* of the school of Sankara take such God as a superior deity undergoing creation etc.. The ultimate truth according to him is the absolute pure consciousness which shines through its own light in the state of *samādhi*. Such vedantins say that the whole phenomenon including all matter, each mind, each individual soul and every divine deity, is included in creating and no such entity in fact a reality.

All such creation is practically false like the dream world or like an imagined entity e.g. a child of a barren woman. The absolute awareness, known as *Brahman*, is the only existent reality. All else appears foolish beings because of their beginningless ignorance. It is such ignorance on account of which the absolute *Brahman* appears to ignorant beings as God as soul as mind and as matter. In fact neither God nor soul, nor matter nor any other thing is a reality. The real existence of such single absolute *Brahman* is the principle of *advaita* as accepted by the followers of Śankaracarya. The great teacher himself taught the truth the theoretical method of logic as well as through the psychological method of practice. But unfortunately, most of his followers proceeded on the method of dry logic and ignored the practicable *vedanta* as taught by the great teacher in *Saundarya-Lahari* and *Prapañcasāra-Tantra*. The fifth degree teacher in the line of his disciples composed *Sri-vidyārṇava Tantra*. His grand teacher, Gaudapāda wrote *Śubhagodaya-stuti* and *Srividya-ratna-stuti* on practical *vedanta*. But most of the *Advaita Vedantins* are even now ignorant about such practicable aspect of the *Vedanta* of Śankara.

The great authors of Kashmir Saivism noted some great defects in the logical thinking of these. *Advaita Vedantins* and raised several objections against it:

Abhnava Gupta felt that the ineffective *Brahman* of such *Vedantins*

comes very close to *sūrya*, the nihilistic void of *nagarjuna* (P. Tr. V. p...) because these Vedantins granted all divine powers of God— head to beginningless ignorance and reduced *Brahman* to a position like that of pure space. They admitted pure consciousness on the nature of Brahman alone but granted all the power of such consciousness to ignorance which they termed either as *Avidyā* or as *Māyā*. In fact they preached what they experienced is a kind of *samādhi* that is a superior type of dreamless sleep. Generally they did not transcend the sleeping state and did not have any experiences of the fourth state of animation called *Turyā* the state of real revelation of the Truth. The same was the case with the Buddhist thinkers like Asanga, Vasubandhu Nagarjuna etc.

The Saivaphilosophers of Kashmir attained higher and clear experiences in the state of self-revelation and realized the self as almighty God, creating himself all phenomena. They saw the self as all bliss and bliss alone and found the phenomenal existence as the reflection of the divine powers of the self. They experienced the fact that the blissfulness of the self makes it playful and its playfulness brings about creation, preservation and dissolution of the universe. They saw further that the self pushes its divine and pure nature into oblivion because of its playfulness and after wards proceeding through another aspect of its playfulness, it recognizes itself as none other than God, the absolute, infinite, eternal, perfect and pure consciousness aware of its nature of divine potency. That is the divine play of the self which appears multifariously as bondage and liberation of all beings. Playing thus, the absolute God does not at all undergo any change or transformation, as apprehended by Vedantines and as established by panthists. All the five stages of the divine play of God becomes manifest in the manner of a reflection. A mirror, bearing reflections of various substances does not undergo any change. Similarly God does not undergo at all any change or transformation while manifesting creation, preservation, dissolution, obscuration and revelations. All these appear inside the psychic light of his own *Prakāśa*. The difference between a mirror and God is twofold. Firstly a mirror being unconscious is not aware of the manifestations of any such reflections and secondly, it requires objects other than itself to cast their reflections into it. But being self-conscious, he is always aware of such reflectionary manifestations shining in him. Secondly, being completely perfect, does not require anything other than himself for the purpose of the manifestation of the play of his five fold God head. Everything exists in him in the form of his divine powers just as all milk products lie in milk in the

form of milk so do all phenomena exist in God in the form of the divine powers of pure consciousness. The powers in him shine as "I". But their reflection appear as "this". The subjective reality when reflected outwardly, appears as objective phenomenon and that is what we call as its creation. Such is the case with all reflections. A person seeing his face in a mirror sees it as directed to the opposite side. Right appear left and left as right in a reflection.

A Sivayogin has to realize himself to be none other than the divinely potent, infinite and pure I-consciousness and has to see the whole phenomenon as the manifestation of his own divine play of God head and that is the view point of *advaita* as taught by the Śaiva philosophers of Kashmir.

Pantheists of the west also see God in each and every phenomenal entity, but they do not see him as the absolute, transcendental consciousness. They do not at all recognize the nomenal aspect of God. The same is the case with Vaiṣṇava thinkers. Pantheists say that God, becoming transformed into phenomenon, does always appear like that. The vaiṣṇava thinkers say that God does not himself undergo any change, but it is his divine power which undergoes all this phenomenal transformation. Arguing like that they forgot that God and this divine power are not at all any two different entities. The theory of reflection, as discussed and propagated by the authors of Kashmir. Saivism is thus the only theory through which the manifestations of both unity and diversity can be mutually necessiated and that is the only theory which can establish the principal of Advaita without any doubts objections and assumptions. Such advaita principal of Kashmir saivism can be termed as theistic absolutism, the absolute pure unconscious being the only reality having theism as its essential nature.



SPANDA

—By Shri Mark S.G. Dyczkowski

From the Jayarathayāmala:

ekah śivo mahāmūlaṁ nirupādhir anantakah |
vijñānjñānasampūrṇaḥ sarvākāras tu mantharah || 121 ||
nistara" ngārṇavākārah paritrptaḥ parāparah |
suśāntamūrtiḥ sarvātmā nirvāṇaiśo 'tinirmalah | 122 ||
tasya śaktiḥ svakaṁ vīryaṁ cidvāmānandagocaram |
vyaktaṁ vyaktivbhedenā spandanānandasundaram || 123 ||
taddharmadharminī jñeyā śaktir ādyā śivasya sā |
nirmalā virajā śuddhā sarvapracurabhāsvarā || JY 1/45/124 ||

There is one Śiva, the great root (of all things) who is devoid of limitations and endless. He is full of the knowledge of consciousness and omniform, churns (his own energy). His form is a waveless sea and completely satisfied he is supreme (transcendent) and inferior (immanent). His form is perfectly tranquil, the soul of all things, he is the lord of Nirvāṇa and very pure. His power is his own vitality (vīrya) and its field is the bliss of the emanation (vāma) of consciousness. Manifest in accord with the mode (bheda) of manifestation, it is beautiful with the bliss of (its) pulsation (spandana). One should know that she is Śiva's primordial power endowed with that (divine) attribute. Stainless, pure radiant, she shines with the abundance of all things.

Dimensions of Spanda:

Kashmiri Śaivism, in accord with its fundamentally Kaula view, is a non-dualism understood to be a conjunction of opposites, In terms of our subject the polarities are in the simplest term s1) the unchanging oneness and 2) the dynamic perpetually mutating diversity.

Spanda is Śiva's universal activity which may be identified with Śakti or directly with Śiva as happened in Kallata's reformist Śaiva *Spandakārikā* which begins with the customary verse praising the main deity:

yasyonmeṣanimeṣābhyāṁ jagataḥ pralayodayau |
taṁśakticakravibhavprabhavaṁ śankaraṁ numah || SpKā 1/1

We praise that Śankara who is the source of the power of the Wheel of Energies by whose expansion and (*unmeṣa*) and contraction (*nimeṣa*)

the universe is absorbed and comes into being.

Spanda literally means 'vibration', 'throb' or 'pulse' and denotes the dynamic cyclic activity of the one divine reality. It is derived from the root *spadi* which means 'a subtle movement' (*kiñciccalane*).

All the schools of Kashmiri Śaivism: the Trika, Kalīkrama, Spanda and Pratyabhijñā developed this dynamic concept of Śakti considerably in terms of their own universe of discourse. The Pratyabhijñā did this by extensive metaphysical, epistemeological and theological, analysis. The other schools followed suit by contributing their own distinctive terminology, symbols and deities. Thus the explication of Spanda, one of the central concepts and experiences of deity and all reality, of all these schools hinged on a few key notions encapsulated in corresponding terms. Although each of them are distinct and loaded with immense meaning, they all also necessarily overlap as they all refer to the same dynamic aspect of the one reality. Consequently, each may be, and in fact is, explained in relation to the others in various ways according to the context. Accordingly we may take any one of these terms and the cluster of concepts it denotes to understand an essential aspect of the others, just as they are all necessary in order to understand any one of them.

These terms are familiar to all students of Kashmiri Śaivism. Indeed, progress in the study of Kashmir Śaivism is, in a sense, progress in the understanding of what these terms denote conceptually (or one could say by means of the use of reason) and through the direct experience of the reality they indicate. Obviously we cannot discuss all these terms in just two lectures but we will have to refer to them repeatedly so I must, at least list and define them in terms of the context of the present subject, that is Spanda.

All of them refer to the second of the two polarities of the two-in-one reality Śiva-śakti. So we must apposition each term to that of the other corresponding polarity:

1) Śiva / Bhairava - Freedom. This is the way his one power, which operating in many ways generates or assumes the form of the God's many powers.

Exemplified in the doctrine of reflection which is the foundation of Śāmbhavopāya.

Light / mirror of consciousness and its power (*anuttarā* / *pratibhā*) through which it generates the reflections within itself.

The aforementioned pure Light (of consciousness) is Bhairava's

supreme (power and) glory. Apart from that one may discern there (for the purpose of instruction) (his) pure freedom. The Light is that which renders all things manifest nor is the universe separate from it (otherwise it would not appear at all). It is indeed reality (sat) that manifests (not an illusion). The truth is the therefore this, namely, that the Supreme Lord, free of restraints exhibits in this way in the void of his own nature the play of emission and withdrawal. Just as earth and water, for example, manifest separately from one another (when reflected) in a stainless mirror so do the modalities of the All within the one Lord of Consciousness. TĀ 3/1-4.

Experience of this dynamism is called Bhairavīmudrā. See Doctrine, p. 158-9.

2) This freedom is identified with vimarśa the fifty aspects of which are its energies as Speech. The unfolding and withdrawal of these energies is the activity of the freedom (*svatantratā*) of Lord Śiva which is Spanda.

3) Sphurattā / sattā / hṛdaya IP

That radiant pulse (of Light of consciousness), the Great (universal) Being (of all things) undifferentiated by time and space is the essence (sāra) and so is said to be the heart of the Great Lord. IP

sā sphurattā mahāsattā kāladeśāviśeṣiṇī |

saiva sāratayā proktā hṛdayam parameṣṭhiṇaḥ ||

The Vitality of Mantra

(Consciousness) is reflective awareness, and so its spontaneous and ever manifest (sadodita) resonance (dhvani) is called the great supreme, Heart. The self-awareness, in the Heart (from which) all things have fallen away, present in the first and last moment of perception is called, according to the (Spanda) teaching the universal vibration of consciousness (*sāmānyaspanḍa*) and is the outpouring (*uccalana*) of consciousness within one's own nature. (This vibration is that) subtle movement (*kimciccalana*) which is the pulsing radiance *sphurana* of Self-luminous consciousness that shines as all things) independent of all else. It is the wave (*ūrmi*) of the ocean of consciousness and consciousness is (never) without it. Indeed, it is the nature of the sea to be (at times tranquil) without waves and (at others) full of waves etc.. This (awareness) is the essence (*sāra*) of all things for consciousness is the essence of the lifeless (*jaḍa*) universe because its very foundation (*pratiṣṭhā*) depends upon it. Again, the essence of that is the Great Heart. TĀ 4/181b-6a.

This awareness centred in itself first extends outwards then is brought to rest inwards, this is the yogic process that alternates between the

expansion and contraction of consciousness and self-awareness. It is termed 'Spanda.'

It is consciousness moving out into differentiated (*vikalpa*) awareness thus creating a venegated universe of experience and then withdrawing inwards and taking its rest in undifferentiated (*nirvikalpa*) self-awareness. The former is termed Śakti and the latter Śiva. They are one. This is so because Śakti requires no support and Śiva does not support anything as nothing exists independently of him.

The expansion into a cosmos of objects (*prameya* which are actually aspects of the activity of perception -*pramaṇa*) marks the contraction of self-awareness. This movement from inner to outer occurs at every instant of perception in such a way that from the undifferentiated awareness first of oneself and then of something outside arises a differentiated perception in the form: "I perceive this". This state then reverts into one of undifferentiated, pure self-awareness when the tension or desire to know (*Ākankṣa*) has thus been relieved. This stage marks the contraction of outer awareness and expansion of its inner aspect. This alternation between inner subjectivity and outer objectivity is Spanda.

The Yogi who applies himself to maintaining awareness of his process experiences what is called the 'expansion of the centre' (*madhyavikāsa*). Simply stated the 'centre' is the centre between two perceptions. Here we catch a glimpse of indeterminate consciousness that is neither the personal, limited self or 'ego', nor object or even perception. The passage we are examining calls it the Great Heart.

This is where this whole process is surveyed as happening within consciousness as an expression of the exertion (*udyama*) the power of the innate Freedom of Śiva Himself who both knows and does all things. The pulsation of this Heart is the effulgence of self-luminous awareness. It is life itself which consciousness from inert matter.

Spanda and the wheel of Energies (śakticakra).

A) Siddhānta: The Five Acts of Śiva (*pañcakṛtya*)

1) *Sṛṣṭi* - emanation 2) *sthiti* - persistence 3) *saṁhāra* - withdrawal 4) *tirodhaṇa* - obscuration 5) *anugraha* - grace.

B) The Krama cycles

There is just one consciousness (which is the whole of reality) and her form is the manifestation blue and (all the other) phenomena such as this. She is like an unsteady, violently flowing river. Behind, (when she has passed) her nature is withdrawn back (into herself) and in front is

experienced in her natural, innate nature as an ever onward moving flow.

ekaiva cit nīlādyavabhāsarūpā asthirahaṭhaughavatī kulyeva paścātpratisamhṛtasvabhāvā agrāragāmiprasaratsahajarūpā lakṣyate, so 'yam nirupādhan citsṛṣṭyādyupādhikṛta bhedaḥ MP by Śitikanṭha p. 46

1) Emergence (*udaya*) 2 Manifestion (*avabhāsa*) 3 Gustation (*carvaṇa*) 4 Assimilation of Time (*kālagrāsa*) /5) Repose (*viśrānti*)

Phases 4 and 5 are aspects of the Inexplicable (*anākhyā*) unitary aspect of consciousness.

Spanda in the three Domains of Practice

In Aṇavopāya:

B) Spanda as the activity of the vital breath.

4b-5) Of these (supports) we will now teach the method concerning the vital breath. The entire Path (namely, the cosmic order) we will describe in due course, extensive and six fold is established all together in its entirety in the vital breath.

6) The extending process of diversification and development (*kalanā*) along the Path (of the cosmic order) takes place in two ways, namely, in a sequential and in a non-successive manner. Succession and its absence essentially amount to (the two ways in which forms are manifest) in the field of phenomenal existence. Thus this can take place either through the differentiated development of single units (*ekakalanā* as happens, for example, in making the transition from cause to effect) or (simultaneously of a number of units as happens when viewing) a picture.

7-8) Again, time (can be experienced) both as a succession (*krama* of moments) as well (as eternal time) free of succession. Both aspects abide entirely within consciousness. Thus scripture affirms that *Kālī* (the Goddess of Time) is the Lord's supreme power. It is that same power which by its spontaneous development (*praroha*) manifests outside consciousness the succession and its absence encompassed within its own nature and so abides as the (life-giving) activity of the vital breath (*prāṇavṛtti*).

9-10) Consciousness alone, very pure and of the nature of Light, severing objectivity from itself manifests as the Sky void of all things. That is said to be the voidness of consciousness and is the supreme state yogins attain by reflecting on objectivized manifestation with an attitude of negation (*neti neti*).

11) This same void self (*khātman*) is called the vital breath, the throb (*spanda*) and wave (*urmi*) of consciousness. By virtue of its inherent inner outpouring (*samucchalattva*), it falls upon the objectivity (which it)

separated from (itself) with the intention of taking possession of it.

12) Therefore it is said that consciousness initially evolves into the vital breath (*prāṇa*) and that the breath (*vāyu*) becomes the support of the inner mental organ.

13) This vitalizing power of the breath which is the will of inner exertion (of consciousness) is variously called 'pulsation' (*spanda*) effulgence (*sphurattā*), repose, life the Heart and intuition. TĀ 6/

3) Spanda as the activity of the mind, senses and body.

Maheśvarānanda distinguishes between three aspects of reality: 1) Spanda - the universal activity of consciousness. This is the 'emergent' (*udita*) aspect. 2) Aspanda - the unchanging aspect of consciousness the 'tranquil' (*śānta*) aspect, reposing in its own infinite being. 2) Parispanda - 'Subsidiary' activity and the vital breath, mind, senses and body induced and sustained by the universal activity of consciousness and through which it operates.

See Doctrine p. 125

In Śāktopaya

Kṣemarāja considers this means to realisation to the one most specific to the Spanda teaching (*śāstra*). See Doctrine, p. 260-1, note 181.

In the domain of the Divine Means (*Śāmbhavopāya*):

There are three principle powers which are responsible for the manifestation of the differentiations (*bheda*) in the aspects of reflective awareness), namely, 1) the Absolute (*anuttarā*) which is the Supreme (*parā* power), 2) the will which is middling (*parāparā*) and 3) the power of unfolding called knowledge which is said to be the lower (*aparā* power). The aforementioned six pure states of consciousness (symbolized by the Letter A, Ā, I, Ī, Ū) are generated by the arousal of these (powers which are either unaroused - symbolized by the short vowels or aroused - symbolized by the long vowels).

By the (mutual) absorption (into one another) of these powers brought about by their arising as the power of action, the twelve aforementioned forms of consciousness (came into being) within which all things are contained.

Such is the God of the god's principle wheel of powers by virtue of which the God of the gods is Bhairava, endowed with all power. TĀ 3/ 248-252ab



Swamiji and Abhinavagupta

– by Dr. Bettina Baumer

One afternoon (or was it morning), may be in 1989 or 1990, I was fortunate to come to the Ashram at a quiet hour. Apart from the Devis, there was only Pandit Kokiloo sitting in the presence of Gurudeva. As always when there were no visitors with distracting thoughts, the atmosphere was blissful and divine. Swamiji accepted my praṇām gracefully. The greatest grace was that he allowed me to sit along with the three selected disciples and to listen to his teaching Gurunātha-parāmarśa by Madhurāja, the South Indian ascetic and disciple of Abhinavagupta. I was not aware whether the choice of the text was spontaneous, or whether Pandit Kokiloo had asked for it. It did not matter at the moment. What mattered was the way Swamiji read and translated the text (into Hindi) which created an unforgettable impression in my mind and heart. He was in an exalted state of ecstasy, his face shining, eyes overflowing, as so often, with a divine radiance, emotionally red and filled with tears, quite unaware of the effects of his state on the body. I felt I should be totally erased so that my separate ego should in no way interfere with this divine spectacle, or rather so receptive that the words flowing from the Master's mouth would directly flow into my being, without obstacles. What happened was that Swamiji read the text in a state of non-duality: it was as if he was the author and the one described and eulogized in it, as well as the interpreter of the text. In other words, he was Abhinavagupta, he was Madhurāja, and yet he was Swami Lakshman Joo, the great disciple and admirer of Abhinavagupta. This miracle of non-duality was possible because the words composed 1000 years ago, printed in a book, and the words pronounced by the Master were flowing from one Source - *parāvāk*. This may be an interpretation based on too much reading of the Kashmir Śaiva texts, but at that moment, in that blessed atmosphere of Ishvar Ashram, sitting in the open verandah, it was a direct and immediate experience. That time my only thought was : He is Abhinavagupta. Whatever qualities and greatness is described in this poem describes himself and all that with no ego in between. The contrary of *abhimāna*, it was identification. In identification there is no place for *abhimāna*.

I am not looking for similarities, for there are as many differences. Swamiji was not such a prolific writer as Abhinavagupta was, though he

was a master of all the texts of the tradition, Swamiji did not play *vīṇa*, although he loved music. It was not similarity but identity. Abhinavagupta often plays with the meaning of his name: that he was ever new and hidden – and so was Swamiji: whenever one would come in his presence, there was a new experience, a freshness of spiritual discovery. And at the same time he remained so hidden, hiding his greatness under the appearance of normal life: *Abhinava-gupta*.

While reading Abhinavagupta's verses on his own life, on his teachers and disciples, another similarity is striking: he not only gratefully acknowledges his debt to his masters, but he also speaks highly and lovingly of his disciples some of whom are his close relatives. He admits that he writes certain texts because he was urged by his disciples, and he gracefully fulfills their request out of compassion, in order to enlighten them.¹ In the case of Swamiji too, many of his relatives were also his close disciples: brothers, sisters, nephews, nieces, grandnephews.

A few times I heard Swamiji, half jokingly, half seriously, when he said: "Abhinavagupta was greater than Śiva!" One can understand it in this sense, that he revealed Śiva and that he showed the way to realize him. In that sense too, Swamiji was close to his great predecessor.



Truth is a Pathless Land

— by Shri J. Krishnamurti

(Continued from last issue of January 2004)

VIII

It was one of those lovely morning that have never been before. The sun was just coming up and you saw it between the eucalyptus and the pine. It was over the waters, golden burnished—such light that exists only between the mountains and the sea. It was such a clear morning, breathless full of that strange light one sees not only with one's eyes but with one's heart. And when you see it the heavens are very close to earth, and you are lost in the beauty. You know, you should never meditate in public, or with another, or in a group: you should meditate only in solitude, in the quiet of the night or in the still, early morning. When you meditate in solitude it must be solitude. You must be completely alone, not following a system, a method, repeating words, or pursuing a thought, or shaping a thought according to your desire. This solitude comes when the mind is freed from thought, when there are influences of desire or of the things that the mind is pursuing, either in the future or in the past, there is no solitude. Only in the immensity of the present this aloneness comes. And then in quiet secrecy in which all communication has come to an end, in which there is no observer with his anxieties, with his stupid appetites and problems only then, in that quiet aloneness, meditation becomes something that cannot be put into words. Then meditation is an eternal movement. I don't know if you have ever meditated, if you have ever been alone, by yourself, far away from everything, from every person, from every thought and pursuit, if you have ever been completely alone, not isolated, not withdrawn into some fanciful dream or vision, but far away, so that in yourself there is nothing recognisable, nothing that you touch by thought or feeling, so far away that in this full solitude the very silence becomes the only flower, the only light, and the timeless quality that is not measurable by thought. Only in such meditation love has its being. Don't bother to express it: it will express itself. Don't use it. Don't try to put it into action, it will act, and when it acts, in that action there is no regret, no contradiction, none of the misery and travail of man.

So meditate alone. Get lost. And don't try to remember where you have

been. If you try to remember it then it will be something that is dead. And if you hold on to the memory of it when you will never be alone again. So meditate in that endless solitude, in the beauty of that love, in that innocence, in the new-then there is the bliss that is imperishable.

The sky is very blue, the blue that comes after the rain, and these rains have come after many months of drought. After the rain the skies are washed clean and the hills are rejoicing, and the earth is still. And every leaf has the light of the sun on it, and the feeling of the earth is very close to you. So meditate in the very secret recesses of your heart and mind, where you have never been before.

IX

That morning the sea was like a lake or an enormous river-without a ripple, and so calm that you could see the reflections of the stars so early in the morning. The dawn had not yet come, and so the star, and the reflection of the Cliff, and the distant lights of the town, were there on the water. And as the sun came up over the horizon in a cloudless sky it made a golden path, and it was extra-ordinary to see that light of California filling the earth and every leaf and blade of grass. As you watched, a great stillness came into you. The brain itself became very quit, without any reaction, without a movement, and it was strange to feel this immense stillness. Feel is not the word the quality of that silence, that stillness, is not felt by the brain, it is beyond the brain. The brain can conceive, formulate or make a design for the future, but stillness is beyond its range, beyond all imagination, beyond all desire. You are so still that your body becomes completely part of the earth, part of everything that is still.

And as the slight breeze came from the hills, stirring the leaves, this stillness, this extraordinary quality of silence, was not disturbed. The house was between the hills and the sea, overlooking the sea. And as you watched the sea, so very still, you really became part of every thing. You were everything, you were the light, and the beauty of love. Again to say you were a part of everything is also wrong the word you is not adequate because you really weren't there. You didn't exist. There was only that stillness, the beauty, the extraordinary sense of love. The words you and I separate things, this division in this strange silence and stillnessness doesn't exist. And as you watched out of the windows, space and time seemed to have come to an end, and the space that divides had no reality. That leaf and that

eucalyptus and the blue shining water were not different from you.

Meditation is really very simple. We complicate it. We weave a web of ideas round it what it is and what it is not, but it is none of these things. Because it is so very simple it escapes us, because our minds are so complicated, so timeworn and time based. And this mind dictates the activity of the heart and then the trouble begins. But meditation comes naturally, with extraordinary ease, when you walk on the sand or look out of your window or see those marvellous hills burnt by last summer's sun. So why are we such tortured human beings, with tears in our eyes and false laughter on our lips? If you could walk alone among those hills or in the woods or along the long, white, bleached sands in that solitude you would know what meditation is. The ecstasy of solitude comes when you are not frightened to be alone no longer belonging to the world or attached to anything. Then, like that dawn that came up this morning, it comes silently, and makes a golden path in the very stillness, which was at the beginning, which is now, and which will be always there.

X

Happiness and pleasure you can buy in any market at a price. But bliss you cannot buy-for yourself or for another. Happiness and pleasure are time-binding. Only in total freedom does bliss exist, pleasure, like happiness, you can seek, and find, in many ways. But they come, and go. Bliss that strange sense of joy-has no motive. You cannot possibly seek it. Once it is there, depending on the quality of your mind, it remains timeless, causeless and a thing that is not measurable by time. Meditation is not the pursuit of pleasure and the search for happiness. Meditation, on the contrary, is a state of mind in which there is no concept or formula, and therefore total freedom. It is only to such a mind that this bliss comes unsought and uninvited, once it is there, though you may live in the world with all its noise, pleasure and brutality, they will not touch that mind. Once it is there. Conflict has ceased. But the ending of conflict is not necessarily the total freedom. Meditation is a movement of the mind in this freedom. In this explosion of bliss the eyes are made innocent, and love is then benediction.

XI

Meditation is not the mere control of body and thought nor is it a system of breathing in and breathing out. The body must be still, healthy and

without strain, sensitivity of feeling must be sharpened and sustained, and the mind with all its chattering, disturbances and groupings must come to an end. It is not the organisms that one must begin with, but rather it is the mind with its opinions, prejudices and self-interest that must be seen to. When the mind is healthy, vital and vigorous then feeling will be heightened and will be extremely sensitive. Then the body, with its own natural intelligence which hasn't been spoiled by habit and taste, will function as it should.

So one must begin with the mind and not with the body, the mind being thought and the varieties of expressions of thought. Mere concentration makes thought narrow, limited and brittle, but concentration comes as a natural thing when there is an awareness of the ways of thought. This awareness does not come from the thinker who chooses and discards. Who holds on to and rejects. This awareness is without choice and is both the outer and the inner, it is an inter flow between the two, so the division between the outer and the inner comes to an end.

Thought destroys feelings-feeling being love. Thought can offer only pleasure, and in the pursuit of pleasure love is pushed aside. The pleasure of eating, of drinking has its continuity in thought, and merely to control or suppress this pleasure which thought has brought about has no meaning, it creates only various forms of conflict and compulsion.

Thought, which is matter, cannot seek that which is beyond time, for thought is memory, and the experience in that memory is as dead as the leaf of last autumn.

In awareness of all this comes attention, which is not the product of inattention. It is inattention which has dictated the pleasurable habits of the body and diluted the intensity of feeling. Inattention cannot be made into attention. The awareness of inattention is attention.

The seeing of this whole complex process is meditation from which alone comes order in this confusion. This order is an absolute as is the order in mathematics, and from there is action the immediate doing. Order is not arrangement, design and proportion: these come much later. Order comes out of a mind that is not cluttered up by the things of thought. When thought is silent there is emptiness, which is order.



God Incarnate

— by Arvind Shah

*The Himaliyan land
Grand
Lakshman took birth
To come on this Earth
Born to a family of wealth
Social recognition and Health
Riches - and many material
Luxuries at disposal
It attracted him now
he disassociated all to shun
Had a bigger thirst: much
Search, find and quench
See and realise
Where He practically lies,
Easily accessible
For each to be capable.
His prayer and penance
study research and experience
in great solace
To attain greatest of the great grace.
He realised
attained and retained
Found Him in Him thick
And established the absolute link
Lord appears as human incarnate
To correct matters and correlate
Swami Lakshman Joo came on earth
and showed ways of worth
Illuminated the paths of prosperity
For us to tread easily
Devotion to swami ji pure
Illusions to disappear: Sure.*

अतीत-मन्थन

ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्ष्मणजी महाराज का वचनामृत

सद्गुरवे नमः

त्वद्भक्तिपनदीधितिसंस्पर्शवशान्ममैष दूरतरम्।

चेतोमणिर्विमुञ्चतु रागादिकतप्तवह्निकणान्॥ ४०॥

एष	= यह	संस्पर्शवशात्	= स्पर्शित होकर
मम	= मेरा	रागादिक-	= रागादिक वासनाओं के
चेतः	= हृदयरूपी	तप्त	= जले हुए
मणिः	= सूर्यकान्त रत्न	वह्निकणान्	= संस्कार रूपी अंगारों
त्वत्	= आप की		के ज़रों को भी
भक्ति	= भक्तिरूपी	दूरतरम्	= बहुत दूर
तपन	= सूर्य की	विमुञ्चतु	= हटा दे॥ ४०॥
दीधिति	= किरणों से		

गलतु विकल्पकलङ्कावलिः समुल्लसतु हृदि निर्गलता।

भगवन्नानन्दरसप्लुतास्तु मे चिन्मयीमूर्तिः॥ ४१॥

भगवान्	= हे भगवन्!	(च)	= और
(मे)	= मेरे	मे	= मेरी
विकल्प-	= संकल्प विकल्परूपी	चिन्मयी	= चैतन्यमयी
कलङ्कावलिः	= कलंक की माला	मूर्तिः	= मूर्ति
गलतु	= नष्ट हो जाय	आनन्दरस	= आनन्द के रस से
हृदि	= मेरे हृदय में	प्लुता	= आप्लावित
निर्गलता	= पूर्ण स्वतंत्रता का भाव	अस्तु	= हो जाय ॥ ४१॥
समुल्लसतु	= चमक उठे		

तस्मिन्यदे भवन्तं सततमुपश्लोकयेयमत्युच्चैः।

हरिहर्यश्चविरिञ्चा अपि यत्र बहिः प्रतीक्षन्ते ॥ ४२॥

(अहं)	= मैं	यत्र	= जहाँ
तस्मिन्	= उस आपके	हरि-	= भगवान् विष्णु
पदे	= परम धाम में	हर्यश्च-	= इन्द्र और
सततं	= सदा	विरिञ्चः	= ब्रह्मा
अत्युच्चैः	= बहुत ऊँचे स्वर में	अपि	= भी
भवन्तं	= आपकी	बहिः	= बाहिर
उपश्लोकयेयं	= स्तुति श्लोकों द्वारा करूँ (एव)		= ही
	प्रतीक्षन्ते		= प्रतीक्षा करते हैं ॥ ४२॥

कृ नु रागादिषु रागः कृ च हरचरणाम्बुजेषु रागित्वम्।
इत्थं विरोधरसिकं बोधय हितममर मे हृदयम्॥ ४३॥

अमर	=	हे प्रभो !	रागित्वम्	=	भक्ति !
कृ नु	=	कहाँ	इत्थं	=	ऐसी
रागादिषु	=	राग आदि	हितम्	=	कल्याण की बात
		विषयों के प्रति	विरोधरसिकं	=	विरोध में रसिक अर्थात्
रागः	=	आसक्ति		=	विरोध में फंसे हुए
च	=	और	मे	=	मेरे
कृ	=	कहाँ	हृदयं	=	मन को
हर-	=	महादेवजी के	बोधय	=	समझायें ॥ ४३॥
चरण-अम्बुजेषु	=	चरण कमलों के प्रति			

तत्तदपूर्वामोदत्वच्चिन्ताकुसुमवासना दृढताम्।

एतु मम मनसि यावन्नश्यतु दुर्वासनागन्धः ॥ ४४॥

(प्रभो)	=	हे स्वामी	मनसि	=	हृदय में
तत्तत्	=	उस	(तावत्)	=	तब तक
अपूर्व-	=	अनूठी	दृढताम्	=	दृढभाव को
आमोद-	=	सुगंधि से युक्त	एतु	=	प्राप्त हो जाय
त्वत्	=	आप के	यावत्	=	जब तक कि
चिन्ता-	=	चिन्तन रूपी	दुर्वासना	=	बुरी वासना रूपिणी
कुसुमवासना	=	फूलों की सुगंधि	गन्धः	=	दुर्गन्धि
मम	=	मेरे	नश्यतु	=	समूल नष्ट हो जाय ॥ ४४॥

विचरन्योगदशास्वपि विषयव्यावृत्तिवर्तमानोऽपि।

त्वच्चिन्तामदिरामदतरलीकृतहृदय एव स्याम् ॥ ४५॥

(नाथ)	=	हे नाथ !	(अहं)	=	मैं
योग-	=	योग संबन्धी	त्वत्	=	आपके
दशासु	=	अवस्थाओं में	चिन्ता-	=	चिन्तन रूपिणी
विचरन्नपि	=	विचरण करता हुआ भी	मदिरा-	=	मदिरा की
विषय-	=	विषयों के	मद-	=	मस्ती से
व्यावृत्ति	=	नियमनादि साधनाओं में	तरलीकृत हृदयः	=	लोल (चंचल) हृदय वाला
वर्तमानः	=	लगा हुआ	एव	=	ही
अपि	=	भी	स्याम्	=	बनूँ ॥ ४५॥

*समुत्सुकास्त्वां प्रति ये भवन्तं प्रत्यर्थरूपादवलोकयन्ति।

तेषामहो तत्किमुपस्थितं स्यात्किं साधनं वा फलितं भवेत्तत्॥ ४६॥

त्वां	= आपकी	अहो	= भला
प्रति	= ओर	तत्	= वह
समुत्सुका	= लालायित बने हुए	किं	= कौन-सा
ये	= जो भक्त-जन	साधनं	= साधन
भवन्तं	= आपको	उपस्थितं	= उपलब्ध
प्रत्यर्थरूपात्	= प्रत्येक वस्तु में	स्यात्	= होता होगा
अवलोकयन्ति	= देखते हैं	वा	= और उस साधना से
तेषाम्	= उनको	तत् किम्	= वह कौन सी अवस्था
		फलितं भवेत्	= प्राप्त होती होगी ॥ ४६ ॥

तात्पर्य यह है कि जिस अलौकिक साधन के द्वारा भक्त-जन आपके स्वरूप को प्रत्येक घटपटादि पदार्थों में करामतकवत् देखते हैं, उस अनुपम साधना को समझना हमारी बुद्धि की सीमा से बाहिर है। उस साधना को या तो वे भक्त ही जान सकते हैं अथवा उनके प्रभुदेव।

सदा भव्देहनिवासस्वस्थोऽप्यन्तः परं दह्यत एष लोकः।

तवेच्छया तत्कुरु मे यथात्र त्वदर्शनानन्दमयो भवेयम् ॥ ४७ ॥

एषः	= यह	तव	= अपनी
लोकः	= सांसारिक लोग	इच्छया	= इच्छा से
सदा	= आपके	मे	= मेरे लिये
देह-	= स्वरूप में	तत्कुरु	= ऐसा कीजिये
निवास	= रहने के कारण	यथा	= जिससे कि
स्वस्थः	= स्वस्थ होने पर	(अहं)	= मैं
अपि	= भी	अत्र	= इस संसार में
वासनात्मकैः भावैः	= सांसारिक वासनाओं से	त्वत्	= आपकी
अन्तर	= भीतर ही भीतर	अर्चन	= पूजा रूपिणी
दह्यते	= जलाये जाते हैं	आनन्द-	= आनन्दरूपता से
	अर्थात् दुःखी होते हैं	मयः	= युक्त
(इत्यतः)	= इसलिये	(एव)	= ही
(त्वं)	= आप	भवेयम्	= बन जाऊँ ॥ ४७ ॥

परं परस्थं गहनादनादिमेकं निविष्टं बहुधा गुहासु।

सर्वाल्यं सर्वचराचरस्थं त्वामेव शम्भुं शरण प्रपद्ये ॥ ४८ ॥

(अहं)	= मैं	बहुधा	= अनेक प्रकार के
गहनात् परस्थं	= मायोत्तीर्ण धाम में	गुहासु	= हृदय रूपी गुफाओं में
	ठहरे हुए	निविष्टं	= बैठे हुए
परं	= उत्कृष्ट	सर्वाल्यं	= सबके विश्रान्ति स्थान
अनादि	= अनादि	(च)	= और
एकं	= अद्वितीय	सर्व-	= सभी

चराचरस्थं	=	स्थायी जंगम में ठहरे हुए शम्भुं	=	शिवजी महाराज को	
त्वां	=	आप	एव	=	ही
शरणं	=	सब जगत के रक्षक	प्रपद्ये	=	प्रणाम करता हूँ ॥४८॥

ते पङ्कमङ्कगतमात्मनि धावयन्ति दिङ्मण्डलं च परितः परिपावयन्ति।

क्लेशान्क्षणात्तृणगणानिव लावयन्ति ये त्वां प्रकाशवपुषं हृदि भावयन्ति ॥ ४९ ॥

ये	=	जो भक्त	दिङ्मण्डलं	=	सारी दिशाओं को
प्रकाशवपुषं	=	प्रकाशस्वरूप	परितः	=	चारों ओर से
त्वां	=	आपका	परिपावयन्ति	=	पवित्र करते हैं
हृदि भावयन्ति	=	हृदय में ध्यान करते हैं	च	=	और
ते	=	वे	क्लेशान्	=	अविद्या आदि क्लेशों को
आत्मनि	=	अपने हृदय के	तृणगणन्	=	तिनकों के समूह की
अङ्कगतं	=	बीच में होने वाले	इव	=	भांति
पङ्कं	=	अज्ञान रूपी कीचड़ को	क्षणात्	=	क्षण भर में
धावयन्ति	=	धो डालते हैं।	लावयन्ति	=	काट देते हैं ॥४९॥

मानुष्यनावमधिगम्य चिरादवाप्य निस्तारकं च करुणाभरणं भवन्तम्।

यस्याभवद्भरवशस्तरितुं भवाब्धिं सोऽहं बुडामि यदि कस्य विडम्बनेयम् ॥ ५० ॥

चिरात्	=	चिरकाल के बाद	तरितुं	=	पार करने का
मानुष्य	=	मनुष्य जन्म रूपी	भरवशः	=	भरोसा
नावं	=	नौका को	अभवत्	=	हो गया है,
अधिगम्य	=	प्राप्त कर	सः	=	वही
च	=	और	अहं	=	मैं
करुणाभरणं	=	दया से सुशोभित	यदि	=	यदि
निस्तारकं	=	पार ले जाने वाले	बुडामि	=	(इस भवसागर से पार जाने के बजाय) डूब ही जाऊँ
भवन्तं	=	आपको			
अवाप्य	=	पा कर	(तर्हि)	=	तो
यस्य	=	जिस	इयं	=	यह
(मे)	=	मुझको	विडम्बनेयम्	=	हँसी
भवाब्धिं	=	भवसागर	कस्य	=	किसकी होगी ? ॥ ५० ॥

सहस्रशीर्षा पुरुषः पुनातु वः सहस्रचक्षुर्भगवान् सहस्रपात्।

गलेऽङ्घ्रिमूले नयने च निश्चलास्त्रयोऽप्यमी यं पुरुषा उपासते ॥ ५१ ॥

सहस्रशीर्षा	=	सहस्र फणों वाला	भगवान्	=	सूर्य भगवान्
पुरुषः	=	पुरुष अर्थात् श्री	अमी	=	ये
	=	शेषनाग जी	त्रयः	=	तीनों
सहस्रचक्षुः	=	सहस्र नेत्रों वाला पुरुष इन्द्रदेव	पुरुषाः	=	पुरुष
सहस्रपात्	=	हज़ार किरणों वाला	अपि	=	भी

निश्चला:	= निश्चल	उपासते	= भजते हैं
(सन्तः)	= होकर	(सः)	= वह
यं	= जिस	सहस्रशीर्षा	= अनंत शिरों वाला
(शिवम्)	= शिवजी महाराज को	सहस्रचक्षुः	= अनंत नेत्रों वाला
(क्रमेण)	= क्रमशः	(च)	= और
गले	= कण्ठ देश में	सहस्रपात्	= अपरिमित पदों वाला
अङ्घ्रिमूले	= चरणों पर	पुरुषः	= महापुरुष
च	= आर	भगवान्	= विराट् रूप भगवान् शङ्कर
नयने	= नेत्र स्थान पर	वः	= आप लोगों को
		पुनातु	= पवित्र करे ॥ ५१ ॥

ओं

शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वयमा
 शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुक्रमः॥
 नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि।
 त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि ऋतं वदिष्यामि॥
 सत्यं वदिष्यामि तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु अवतु
 माम् अवतु अक्तारम् ओं शांतिः शांतिः शांतिः॥

मित्रः	= प्राण और दिन	शं	= सुखदायक
	अभिमानि देवता	भवतु	= होवें
नः	= हमको	बृहस्पतिः	= वाणी अभिमानि देवता
शं	= सुखकारी	नः	= हमें
भवतु	= होवें	शं	= सुखकारी
वरुणः	= अपान और रात्रि	भवतु	= होवें
	अभिमानि देवता	उरुक्रमः	= राजा बलि के यज्ञ पर
नः	= हमको		बढ़ाने वाले चरणों वाला
शं	= सुखकारी	विष्णुः	= भगवान् नारायण
भवतु	= होवे	नः	= हमको
अर्यमा	= नेत्र और सूर्य	शं	= सुखकारी
	अभिमानि देवता	भवतु	= होवें
नः	= हमको	ब्रह्मणे	= व्यापक ब्रह्म को
शं	= सुखकारी	नमः	= नमस्कार हो
भवतु	= होवें	वायो	= हे वायु देवता
इन्द्रः	= बल अभिमानि देवता	ते	= आपको
नः	= हमें	नमः	= नमस्कार हो

त्वं	=	आप ही	अवतु	=	रक्षा करे अर्थात् विद्या से
प्रत्यक्षं	=	प्रत्यक्ष		=	युक्त करे
ब्रह्म	=	ब्रह्म	तत्	=	वह वायुरूप ब्रह्म
असि	=	हैं	वक्तारम्	=	आचार्य अर्थात् गुरु की
त्वामेव	=	आपको ही	अवतु	=	रक्षा करे अर्थात् विद्या
प्रत्यक्षं	=	प्रत्यक्ष		=	पढ़ाने में समर्थ बनावे
ब्रह्मा	=	ब्रह्म	माम्	=	मुझे
वदिष्यामि	=	मैं कहूँगा	अवतु	=	रक्षा करे
त्वामेव	=	आपको ही	वक्तारम्	=	गुरुदेव को
ऋतं	=	निश्चयात्मक बुद्धि	अवतु	=	रक्षित करे
वदिष्यामि	=	मैं कहूँगा	ॐ शांतिः	=	आध्यात्मिक विघ्नों से
त्वामेव	=	आपको ही		=	शांति हो !
सत्यं	=	सत्यस्वरूप	शांतिः	=	आधिभौतिक विघ्नों से
वदिष्यामि	=	मैं कहूँगा		=	शांति हो !
तत्	=	वह वायुरूप ब्रह्म	शांतिः	=	आधिदैविक विघ्नों से
माम्	=	मुझ विद्यार्थी को		=	शांति हो !

ॐ शांतिः



तत्क्षण सिद्धिमंत्र—

श्री रामदेवाय शुकात्मजाय
तुभ्यं नमः श्री गुरु दैशिकाय॥
मार्तण्डरूपाय महेश्वराय
श्री महताबकाकाय नमः शिवाय॥
नारायणाय भवतारकाय
तुभ्यं नमः श्रीगुरुलक्ष्मणाय॥

पांचरात्रागम में मातृका विमर्श

— डा० शीतला प्रसाद पाण्डेय

प्राचीनकाल से ही 'मन्त्र' भारतीय जीवन पद्धति के साथ अभिन्न रूप से संलग्न रहा है। गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि पर्यन्त सभी संस्कारों एवं जीवन की कई समस्याओं के समाधान हेतु भारतीय मानस मन्त्रविद्या का सहारा लेकर उससे लाभान्वित होता चला आ रहा है। समस्त वैदिक साहित्य, तान्त्रिक, यौगिक और आयुर्वेद वाङ्मय इस तथ्य के ज्वलन्त प्रमाण हैं।

पांचरात्र आगम निर्विवाद रूप से एक प्राचीन आगमिक प्रक्रिया है। पांचरात्र सम्प्रदाय एक जीवन्त व्यावहारिक सम्प्रदाय है। इस सम्प्रदाय के समस्त व्यावहारिक क्रिया कलाप में मन्त्रों का प्रयोग एक अनिवार्य विषय है। अस्तु पांचरात्रागम संहिताओं के प्रायः प्रत्येक ग्रन्थ में मन्त्र-वर्णन सम्बद्ध विषय-विवेचन के प्रति न्यूनाधिक रूप से समर्पित है। पांचरात्रागम ग्रन्थों में वर्णित मन्त्रों के ऊपर विचार करने पर सामान्यतः दो प्रकार के मन्त्र देखे जाते हैं - 1. वैदिक मन्त्र तथा 2. आगमिक मन्त्र। पांचरात्रागम-प्रक्रिया में वैदिक मन्त्रों की अपेक्षा आगमिक मन्त्रों का प्रयोग अधिक होता है। ये आगमिक मन्त्र कुछ गद्यरूप में तथा कुछ श्लोक रूप में पाये जाते हैं।

अन्य आगम-सम्प्रदायों की भांति पांचरात्रागम में निरूपित मन्त्र विषय को मुख्य रूप से दो भागों में बाँटा जा सकता है - मातृका विभाग तथा मन्त्रविभाग। मातृका विभाग में मन्त्रोत्पत्ति में आधारभूत वर्णों की उत्पत्ति, उनके स्वरूप, उनकी विविध संज्ञायें, उनकी शक्ति, वर्णों की राशि आदि विषय का विवेचन होता है। मन्त्रविभाग में मन्त्रोद्धार के प्रकार, मन्त्रस्वरूप, उनके प्रयोग आदि का विवरण प्राप्त होता है।

आचार्य वसुगुप्त ने मातृका को "ज्ञानाधिष्ठानं मातृका" कहा है। सामान्यतया मातृका वर्णरूपिणी मानी जाती है - ऐसा निर्देश ललितासहस्रनाम में भी है।

वर्णमाला को समुदित रूप से मातृका कहा जाता है। ये मातृकाएँ चार प्रकार की हैं: 1. केवल 2. बिन्दुसंयुक्त 3. विसर्गयुक्त तथा 4. उभयात्मक। इनमें सामान्यतः लोक में बिन्दु-विसर्ग-रहित मातृकाओं का प्रयोग होता है। केवल के अतिरिक्त अन्य तीनों का प्रयोग मन्त्रशास्त्र में मिलता है। स्वच्छन्दतन्त्र का स्पष्ट घोष है कि- "न विद्या मातृका परा" अर्थात् मातृका से परे कोई विद्या नहीं है। मातृका की महिमा का निरूपण करते हुए परात्रिंशिका में बताया गया है कि वर्णमाला-अक्षमाला या मातृका को महायोगी शिव भी सदा जपते रहते हैं सामान्यजनों की बात ही क्या ? पांचरात्र के अहिर्बुध्न्यसंहिता में मन्त्र-वर्णन का निरूपण करते हुए वर्णों की उत्पत्ति के सन्दर्भ में यह प्रतिपादित है कि - विष्णु की संकल्परूप दिव्या क्रियाशक्ति, जो रक्षा का साधन है, वह दो तरह की है - 1. शस्त्रास्त्ररूपा तथा नानामन्त्रमयी। मन्त्र यन्त्र और कोश में चित्रित वेद

तथा तन्त्र उभयोद्भूत हैं। मन्त्रमय क्रियाशक्ति में मात्र धर्मनिष्ठ ब्राह्मणों का ही अधिकार है। विष्णु की शक्ति के भाव्य (भूतिः) तथा भावक (विष्णुसंकल्प, सुदर्शन) दो भेद हैं। पुनः भाव्य के शुद्धि और अशुद्धि दो भेद बताये गये हैं।

प्रस्तुत शक्ति विभेद भगवान् का भावानुगामिनी है। क्रियाशक्ति की स्थिति मन्त्रमयी है। क्रियाशक्ति ही नादरूपता को प्राप्त करती है। नाद दीर्घ घण्टा-र व की तरह होता है। उसका साक्षात्कार केवल परमयोगी ही करते हैं। उसी नाद की परम योगियों के द्वारा जब कभी समुद्र-जल-बुद् बुद के सदृश उन्मेष प्राप्त होता है तो बिन्दु कहा जाता है। नाम तथा नामी दो प्रकार के बिन्दु भी बताये गये हैं नामोदय को प्राप्त कर शब्दब्रह्म की प्रवृत्ति होती है। बिन्दुमयी शक्ति स्वेच्छया नामता को ग्रहण करती है। एतावता शब्दब्रह्म की प्रवृत्ति में मुख्यतया बिन्दु ही कारण है।

बिन्दु के दो विभाग बताये गये हैं- स्वर तथा व्यंजन। बिन्दुशक्ति के द्वारा पराविसृष्टाख्य सर्गमय शब्द का उदय होता है। शब्द एकार्थक और अनेकार्थक होते हैं ये नानावर्ण विकारयुक्त होते हैं। शब्द को साक्षात् सामस्वरूप तथा लक्ष्मी का शब्दमय शरीर कहा गया है। बिन्दु का स्वर तथा व्यंजन-रूप में विवर्त (विस्तार) होता है। अकारादि का समुन्मेष अनुत्तरकाल में होता है। अकार को सर्ववाग्रूप बताया गया है। बिन्दु से ही इकार और उकार का उन्मेष होता है। इन्हीं तीनों वर्णों से सभी स्वर वर्णों का विस्तार होता है। मूल तीन स्वरों के विभावन के बाद 'अ' अनुत्तर से 'आ' आनन्दभाव को प्राप्त होता है। ईशान 'इ' इच्छाशक्ति से 'ई' भाव को प्राप्त होता है। ऊनरूप 'उ' उन्मेष करता हुआ 'ऊ' भाव को प्राप्त करता है। अनुत्तर इच्छा सन्धान से 'एकार' उत्पन्न होता है। तत्पश्चात् अनुत्तर भवन से 'ऐ' भाव को प्राप्त करता है। दिव्योन्मेष से 'ओकार' की उत्पत्ति होती है। पुनः अनुत्तरभवन से 'औ' भाव की उत्पत्ति होती है। ए, ऐ ओ तथा औ- ये चारों वर्ण सन्ध्यात्मक कूटस्थ कहे गये हैं। इन चार सन्ध्यात्मक कूटस्थ स्वरों की उत्पत्ति का एक अन्यक्रम भी निरूपित है। अनुत्तरइच्छा - योग से वर्द्धमान 'ए' कहा गया है। पुनः अनुत्तरसंयोग से 'ऐ' ऐश्वर्यमान है। दिव्य अनुत्तर उन्मेष से 'ओ' की उत्पत्ति कही गयी है। अनुत्तर और्जित्य से सम्भूत 'औ' की उत्पत्ति होती है। अ, ल् से 'लृ' की उत्पत्ति होती है। तत्पश्चात् उद्योग से पुनः आकार प्लवमान होता है। इस तरह चतुर्दश उद्योगों से विविधाकार - विभाविनी नटी की भाँति विष्णु की आद्याशक्ति कुण्डली विजृम्भित होती है।

इस शक्ति के दो सूक्ष्म रूप हैं और दोनों ही सृष्टि तथा संहार के कारण हैं। यह क्रियाशक्ति-महासत्ता अनाख्येया है। यह शक्ति शब्दात्मना विवृतरूप होकर सृष्टिरूपता को प्राप्त करती है। सृष्टि-सर्ग तथा विसर्ग-विसर्जन ये रूप हैं। मूलाधार से समुद्यत होकर वह शान्ता निरंजना शक्ति ही सांजना होकर उन उन संस्कारों से दृष्टि-दृश्यात्मकता को प्राप्त करती है, जो शब्दार्थ-तत्त्ववर्तिनी कही गयी है। यह योग दृश्या पश्यन्ती के नाम से

जानी जाती है तथा इनका उदय नाभि से कहा गया है। यही वैष्णवी शक्ति सत्तारूपा 'मन्त्रमाता' के नाम से अभिहित है, जिसे प्राप्त कर योगीजन अधिकारक्षय को प्राप्त करते हैं।

सनत्कुमारसंहिता में मन्त्र-मातृकाओं की उत्पत्ति का क्रम वर्णित है। तदनुसार स्वरवर्णों की उत्पत्ति इस प्रकार बताई गयी है- स्वरों का आदिवर्ण अकार अव्यय है। अकार से इकार की इकार से उकार की, उकार से ऋकार की, ऋकार से लृकार की, लृकार से एकार की, एकार से ओकार, ओकार से अंकार की क्रमशः उत्पत्ति बतायी गयी है। ये ही आठ स्वर वर्ण पहले उत्पन्न हुए। इन्हीं आठ वर्णों से इनके तत्तत् दीर्घवर्ण उत्पन्न हुए। जयाख्यासंहिता में भी प्रायः इसी तरह स्वर वर्णों की उत्पत्ति का निर्देश है।

स्वरवर्णों की उत्पत्ति के पश्चात् पांचरात्र ग्रन्थों में व्यंजन वर्णों की उत्पत्ति का क्रम भी विवेचित है। मातृकागत वर्णों तथा महेश्वरसूत्र में वर्णित चतुर्दश सूत्रगत वर्णों की तुलना करने पर दोनों स्थानों पर वर्णों की साम्यता के बावजूद वर्णोत्पत्ति में कोई साम्य नहीं है।

मन्त्रवर्णों की उत्पत्ति के निर्देश के बाद उनके विलय-क्रम का निर्देश भी देखने को मिलते हैं। वह क्रम अधोलिखित है- अकार में यमकों का न्यास होता है। उसका प्रणव के साथ आलोडन कर पाँच मात्राओं का उद्धार होता है। पाँच मात्राएँ क्षकार में नियोजित होती हैं, फिर उत्पत्तिक्रम से सब वर्णों का लय कहा गया है। तत्तद्वर्णों के लय की पृथक्-पृथक् संज्ञाएँ निर्दिष्ट हैं।

इस क्रम में भी अकार को सभी वर्णों का मूलत्व प्रमाणित किया गया है। सनत्कुमार संहिता के शिवरात्र में भी वर्णों के विभाग आदि का वर्णन प्राप्त होता है। तदनुसार स्वर वर्णों की संख्या १४ बताई गयी है। इनमें सात ह्रस्व तथा सात दीर्घ वर्ण कहे गये हैं। सम्पूर्ण व्यंजन वर्णों की संख्या ३५ बताई गयी है। ये व्यंजन वर्ण ककारादि क्षकारान्त कहे गये हैं। विसर्जनीय तथा बिन्दु को स्वरान्तगोचर होना बताया गया है। व्यंजन प्रायः स्वर आदि में उच्चरित होते हैं। विरल ही केवल व्यंजन का प्रयोग होता है। केवल व्यंजन के साथ बिन्दु अथवा विसर्ग का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। अस्वर व्यंजन एक होता है द्वितीय नहीं। व्यंजन वर्ण का प्रयोग मन्त्र के अन्त में क्रिया जाना चाहिए न कि मन्त्र के आदि में।

पांचरात्र आगम के लक्ष्मीतंत्र में मातृका को मानवाकार की आकृति प्रदान की गयी है। इस मातृका देवी के शरीर के विविध अंग विभिन्न वर्णों के हैं-

उपर्युक्त कथन की पुष्टि पांचरात्र के श्रीप्रश्नसंहिता से भी होती है, जहाँ पर मातृका को मानवाकार के रूप में दर्शाया गया है। इसी संहिता में मातृका के वर्णों के नक्षत्र तथा राशि आदि के भी निर्देश है।

इस क्रम में अकारादि वर्णों से मेषादि तत्तद्राशियों का सम्बन्ध भी निर्दिष्ट हैं:-

प्रपंचसार-तन्त्र में भी वर्णों की राशियों तथा नक्षत्रों से प्रायः इसी प्रकार से सम्बन्ध चित्रित किये गये हैं। श्रीप्रश्नसंहिता में वर्णों के साथ नक्षत्रों का जो सम्बन्ध दिखाया गया है, वह सामान्यतः स्पष्ट है। केवल अन्तिम तीन वर्णों के विषय पूर्ण स्पष्ट प्रतीत नहीं होते। ग्रन्थ के अनुसार 'अहिर्बुध्न्यस्त्रयोवर्णा' कहा गया है। परन्तु ये तीन वर्ण अं, अः तथा ल हैं या क्ष, त्र तथा ज्ञ - यह स्पष्ट नहीं किया गया है। प्रपंचसार में जो एक बात नई कही गई है, वह उपर्युक्त वर्णों (नक्षत्रों) का तत्तद्राशिज होना।

पांचरात्रागम की कुछ संहिताओं में मन्त्रोद्धार के क्रम में मातृकाओं के तत्तद्वर्गस्थ वर्णों का निर्देश करते हुए मन्त्रों का स्वरूपोद्धार प्रदर्शित है: नारदीयसंहिता ने वासुदेव आदि मन्त्रों के उद्धार-क्रम में मातृकाओं को आठ वर्ग में विभक्त होना कहा है। मन्त्रोद्धार के प्रारम्भ में इन मातृका-वर्गों की पूजा की जानी चाहिए। विष्णुसंहिता में भी मन्त्रोद्धार विधि का विस्तार से विवेचन किया गया है।

मन्त्रोद्धार-विधि के अतिरिक्त जयाख्यसंहिता में मातृकाओं को वर्गों में विभक्त कर तत्तद्वर्गस्थ एक-एक वर्ण की विविध संज्ञाएँ दी गई हैं। मन्त्रोद्धारक्रम में उन-उन वर्णों का प्रत्यक्ष निर्देश नहीं कर उनको दी गयी संज्ञाओं का ही उल्लेख किया गया है।

जयाख्यसंहिता ने अकार से हकार तक सभी वर्णों में प्रत्येक वर्ण की तीन-तीन नाम की निर्देश दिये हैं। जयाख्यसंहिता में दी गई संज्ञाओं की भाँति विश्वामित्रसंहिता में प्रायः ऐसे ही मातृका के अन्तर्गत आये वर्णों की संज्ञायें प्राप्त होती हैं।

मन्त्रोद्धार के क्रम में कुछ पांचरात्र संहिताओं में मातृकापीठ के निर्माण का उल्लेख किया गया है। उस पीठ में मातृका-चक्र के कल्पन का चित्रण देखते हैं। शुद्ध भूमि भाग को गोमयसेलीपकर, पंचगव्य से संसिक्त कर तथा चन्दनादि द्रव्यों का उपलेप कर मातृकापीठ का कल्पन होता है। निवात स्थल में सुसंछन्न स्थान को धूपादि से अधिवासित करते हैं तथा विविध पुष्पों से उसकी पूजा करते हैं। उसके ऊपर चतुरस्र या सुवृत्त दो हाथ अथवा एक हाथ का पीठ बनाते हैं। कल्पित पीठ सुसम होता है। उसी मनोरम पीठ पर मन्त्रोद्धार के लिए मातृकाओं के उल्लेख का विधान है। मणियों को जैसे एक सूत्र में पिरोया जाता है उसी प्रकार अव्ययात्मक भगवान्-रूपी सूत्र में ये मातृकाएँ मणियों की तरह स्थित होती हैं।

जयाख्य-संहिता ने अष्टार महाचक्र के कल्पन का निर्देश किया है। इस चक्र में प्रथम अकारादि क्षकारान्त अवर्गादि आठ वर्गों का उल्लेख किया जाता है। मध्य में वर्णचक्र प्रणव का उल्लेख किया जाता है। इस प्रकार मातृका-चक्र में एक-एक वर्ण का पाद्य अर्घ्य आदि के द्वारा पृथक-पृथक अर्चन करते हैं।

मातृका-पीठ का स्वरूप चक्राकार अथवा पद्म के आकार का होता है। इन दोनों

स्वरूपों में यह व्यावहारिक भेद होता है कि पुरुष-मन्त्रोद्धार के लिए चक्ररूप मातृका-पीठ तथा स्त्री-मन्त्रोद्धार के लिए पद्मरूप मातृका-पीठ का कल्पन किया जाता है।

श्री प्रश्न-संहिता ने इस प्रसंग में षोडशार मातृका-चक्र का निर्देश किया है। यह चक्र नाभि, नेमि तथा अरयुक्त होता है। नाभि, नेमि तथा अर की रेखाएँ चन्दन-क्षोद के द्वारा पीठ पर कल्पित होती हैं। मध्य में प्रणव (ओंकार) का उल्लेख कर उसकी पूजा का विधान किया गया है। वहाँ पीठ पर कर्णिका के बीच वर्ण-मातृका का ध्यान विहित है।

इस विवेचन-क्रम से यह स्पष्ट है कि जगत् के मूलतत्त्व की अभिव्यक्ति वर्णात्मक है। अतः इनमें सभी दृश्य तथा अदृश्य तत्त्व प्राणरूप से सन्निहित है और साधक दृश्य वर्णात्मक स्वरूप के ध्यान द्वारा अदृश्य तत्त्व में अपनी वृत्तियों को समाहित कर वैश्व एकाकार की अनुभूति द्वारा परम लक्ष्य की प्राप्ति करने में सफल होता है। इस भाँति दृश्य की सत्तात्मकता में अनुस्यूत साधनों को कर्मकाण्डादि, द्वारा साधनरूप में व्यवहृत कर साधक साध्य की प्राप्ति करता है। इसलिए कर्म-काण्ड की उपयोगिता भी सिद्ध हो जाती है। मन्त्र-यन्त्र आदि उपायभूत है और उपेय है ज्ञानावाप्ति। ज्ञान नादरूप में है क्योंकि बिना वर्णों के शब्दन सम्भव नहीं और बिना शब्द के ज्ञान सम्भव नहीं। अतएव आगमशास्त्र में ज्ञान तथा अक्षरात्मक शब्द में अभेद वर्णित है। इन्हीं से सृष्टि, स्थिति तथा संहार का क्रम भी निरूपित है। सूक्ष्म विचार करने पर यह निश्चित हो जाता है कि साधन कुछ भी हो साध्य सभी का विष्णु-सायुज्य ही है।



सर्व सुखकर मंत्र

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च

नमः शंकराय च मयस्कराय च

नमः शिवाय च शिवतराय च

शम्भवाय—शं-कल्याणं, भवति अस्मात् इति शम्भवः, अथवा शं सुखरूपश्च असौ भवः—संसाररूपः अर्थात् मुक्तिरूपो भवरूपश्च आनन्दविज्ञान घनरूपश्च तस्मै नमः अस्तु। मयोभवाय—सुखरूपाय च नमः अस्तु। शंकराय—शं करोतीति शंकरः लौकिकसुखकराय नमः अस्तु। मयस्कराय—मयः मोक्षसुखं करोति इति मयस्करः, तस्मै नमः अस्तु। शिवाय—कल्याण रूपाय नमः, च शिवतराय—निर्विकाराय, भक्तानपि निष्पापान् करोति, तस्मै नमः अस्तु॥

अनुभव, स्मृति, अपोहन और प्रत्यभिज्ञा

— डॉ० वीणा कुमारी

अनुभव :

किसी विषय (शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध) के साथ इन्द्रिय के सम्पर्क से उद्भूत ज्ञान अनुभव कहलाता है। पहले वस्तु का सम्पर्क होता है और उसके पश्चात् उसकी संवेदना होती है। इन्द्रिय से वस्तु का संवेदित ज्ञान मन और अहंकार से संक्रमित होता हुआ बुद्धि में अंकित हो जाता है। जिस प्रकार की संवेदना होती है, उसी प्रकार का सुखात्मक अथवा दुःखात्मक वस्तुपरक अनुभव बुद्धि में संकलित हो जाता है। तत्पश्चात् जब कभी तद्वस्तुपरक ज्ञान की अपेक्षा होती है, तब उस पूर्व अनुभव के आधार पर उस वस्तु का वैसा-वैसा ज्ञान जागृत होता है। अतः अनुभव प्रथमतः प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से एक बारगी ही होता है पश्चात् उसकी स्मृति अथवा प्रत्यभिज्ञा आदि के रूप में अनुभूति होती है।

स्मृति :

स्मृति मानसिक ज्ञान होता है, यह इन्द्रिय ज्ञान के पूर्व विषय का विशुद्ध मानसिक ज्ञान होता है। अतः पूर्व अनुभूत वस्तु का पुनः विमर्श करना ही स्मृति कहलाता है। चूँकि स्मृति में तो पूर्व घटित वस्तु की अनुभूति होती है, इसलिये इसको संस्कारजन्य कहा जाता है, अर्थात् संस्कार से उत्पन्न होने वाली कहा जाता है।

अतः ज्ञान जब अनुभूत वस्तु के मानसिक व्यापार का विषय बनता है और वस्तु अविद्यमान रहती है, तो स्मृति कहलायेगा। उदाहरणतया, मान लिया जाये कि किसी समय कोई व्यक्ति किसी हाथी सवार राजा के दृश्य से बहुत प्रभावित था, कुछ समय पश्चात् वह केवल उस हाथी को देखता है। हाथी को देखने से उसके मन में पूर्व देखे हुए दृश्य के संस्कार उत्थित हो जाते हैं, फलतः उसे हाथी सवार राजा का ज्ञान हो जाता है। यह ज्ञान उसका स्मृति-ज्ञान है, जिसे केवल संस्कार ज्ञान ही कहा जा सकता है।

अपोहन :

जब हम कोई वस्तु देखते हैं, तो इन्द्रिय से उसका दर्शन होता है। किन्तु उसके विशेष नाम और रूप का निश्चय करना और अन्य नाम और रूपों का निषेध ही अपोहन शक्ति है। अपोहन शक्ति से ही एक वस्तु के दूसरी वस्तु के साथ भेद का पता-चलता है। यदि अपोहन शक्ति न हो, तो वस्तुओं में भेद नहीं कर सकते और सभी वस्तुओं को एक ही रूप में जानेंगे। जिस प्रकार जल है, किन्तु जल में भी विविध तत्त्व

विद्यमान होते हैं, उनको पृथक्-पृथक् रूप में हम अपोहन शक्ति से ही देख सकते हैं। जैसे मनुष्यत्व तो सभी मनुष्यों में एक जैसा ही होता है, किन्तु जब हम चीनी मनुष्य या आँगल मनुष्य इत्यादि कहते हैं, तो उनमें आकार, आकृति, रंग इत्यादि का भेद होने से उनको अपोहन शक्ति से ही पृथक्-पृथक् जाना जाता है। यह अपोहन शक्ति के कारण ही सम्भव होता है। इसी प्रकार गाय, कुत्ते इत्यादि में भी साम्य धर्म विद्यमान रहने पर भी उनकी नस्लों के आधार पर हम उन्हें पृथक्-पृथक् रूप में जानते हैं। यदि यह शक्ति न होती, तो हम किसी भी वस्तु में पार्थक्य नहीं कर पाते।

प्रत्यभिज्ञा :

जब ज्ञानसहित पूर्वानुभूत वस्तु का प्रत्यक्षतः बोध होता है, तो इस ज्ञान अथवा अनुभव को प्रत्यभिज्ञा कहते हैं। जैसे देवदत्त संज्ञक किसी व्यक्ति को कभी हरिद्वार में देखा गया हो, और पुनः वह व्यक्ति जम्मू में प्रत्यक्षतः देखा जाए, तो कहा जायेगा कि यह वही 'देवदत्त' है, जो हरिद्वार में देखा गया था। यहाँ पर 'तत्काल' और 'एतत्काल' एवं 'तद्देश' और 'एतद्देश' का ऐक्य स्थापित होता है। यही प्रत्यभिज्ञा का लौकिक सिद्धान्त है। अतः प्रत्यभिज्ञा केवल भूत संस्कारजन्य मानसिक ज्ञान नहीं होता, अपितु इसमें स्मर्यमान विषय वास्तव में आँखों के सामने होता है एवं पूर्व दृष्ट वस्तु का ऐकात्म्य स्थापित होता है। अर्थात् प्रत्यभिज्ञा ज्ञान में केवल विषय का पूर्व ज्ञान ही आवश्यक नहीं होता, प्रत्युत विषय की उपस्थिति भी आवश्यक होती है। जैसे 'यह वही देवदत्त है'। यहाँ 'यह' शब्द देवदत्त संज्ञक वस्तु के प्रत्यक्ष ज्ञान का द्योतक है, और 'वही' शब्द भूतकाल के ज्ञान का द्योतक है "एवं" शब्द है भूत एवं वर्तमान का एकत्व दिखानेवाला अतः यह ज्ञान प्रत्यभिज्ञा कहलाता है।

अद्वैत शैवदर्शन के अनुसार जड़ और चेतन वस्तुओं के वैचित्र्य सम्पन्न इस विश्व की परमसत्ता के साथ ऐक्य अनुभूति ही प्रत्यभिज्ञा कहलाती है। इसमें दृष्ट और स्मरण क्रियायें एकत्रित रहती हैं, ऐसा आगमों में भी कहा गया है। आचार्य उत्पलदेव के कथनानुसार आत्मा की ज्ञान और क्रिया शक्तियों का आविष्करण ही प्रत्यभिज्ञा है। श्रीकृष्ण ने भी गीता में आत्मा को सर्वव्यापक बताते हुए इसी ज्ञान को अभिव्यक्त किया है। माधवाचार्य महेश्वर प्रत्यभिज्ञा शब्द का अर्थ विश्लेषण करते हुये कहते हैं प्रति अर्थात् अभिमुख होकर ज्ञान प्राप्त करना। लैकिक व्यवहार में 'यह वही चैत्र है' इस प्रकार प्रतिसन्धान करके सम्मुख आई हुई वस्तु का ज्ञान प्राप्त करने को प्रत्यभिज्ञा कहते हैं। आचार्य उत्पलदेव ने परमसत्ता का सहज स्पर्श अनुभूत कराने के लिये शक्तियों के आविष्करण अर्थात् प्रत्यभिज्ञा पर बल दिया है। इन्होंने तो अपने गुरु द्वारा

प्रदर्शित पाँच शक्तियों चित्, आनन्द, इच्छा, ज्ञान और क्रिया को केवल दो शक्तियों में संकुचित करके परमसत्ता के प्रत्यभिज्ञान को और भी सुगम तथा सरल बनाने का प्रयत्न किया है। उत्पलदेव ने शिवस्तोत्रावली में लिखा है कि सर्वेश्वर्यशाली शिव ही अपनी स्वातन्त्र्य शक्ति से अपने स्वरूप को मायादि द्वारा आच्छादित बनाकर छुपा लेते हैं अर्थात् जीवरूप में प्रतिभासित होने लगते हैं। इसलिए उनका परिज्ञान आवश्यक होता है, जिससे ऐक्यानुभूति प्राप्त होती है। यह ऐक्यानुभूति अर्थात् अभेद ज्ञान जितनी मात्रा में होगा, उतनी मात्रा में सिद्धि सम्भव होती है क्योंकि कर्तृता के अनुसार ही ज्ञान और क्रिया का योग होता है। इस प्रकार उत्पलदेव ने अपने गुरु का अनुसरण करते हुए प्रत्यभिज्ञा को यथासम्भव सरल एवं सुगम ढंग से सुस्पष्ट करने का प्रयास किया है। अभिनवगुप्त ने इसे और भी विश्लेषित करके सुग्राह्य बनाने का प्रयत्न किया है।

क) 'प्रत्यभिज्ञा' — प्रतीपम् अर्थात् उल्टे क्रम से अथवा अप्रत्यक्ष रूप से अर्थात् जो पूर्व में ज्ञात था, परन्तु माया शक्ति के आवरण से भूल चुका था, और 'अभिः' अर्थात् जो अब अनुभूत किया जा रहा है। 'ज्ञान' प्रकाश अथवा विमर्श।

ख) पूर्व अनुभूत का वर्तमान से मिलाप प्रत्यभिज्ञा कहलाता है।

ग) पुराणों, सिद्धान्तों, आगमों, तर्क और अनुमान आदि से ज्ञात होता है कि ईश्वर सर्वशक्तिमान् है और आत्मा प्रत्येक के प्रत्यक्ष अनुभव का विषय है। सर्वशक्तिमान् रूप से ईश्वर का ज्ञान और अपने निजी स्वरूप की प्रतीति जब अपने अनुभव में एकत्रित होती है, तो यही प्रत्यभिज्ञा कहलाती है, जिसमें मैं ही वह ईश्वर हूँ ऐसी प्रतीति होती है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आत्मा का महेश्वर रूप में प्रत्यभिज्ञान ही 'प्रत्यभिज्ञा' कहलाता है। प्रत्यभिज्ञा के आधार पर यह सिद्ध किया गया है कि महेश्वर समस्त प्राणियों की आत्मा है और यह आत्मा नित्य प्रकाश स्वरूप है। परन्तु मायादि के कारण स्वरूप को आच्छादित किए रहती है, किन्तु जब आत्मा की असाधारण ज्ञान और क्रिया शक्तियों का प्रदर्शन होता है, तो यही प्रत्यभिज्ञा कहलाती है। अतः मोह आदि का आवरण दूर होने से ही प्रत्यभिज्ञा की प्राप्ति हो सकती है। क्षेमराज ने भी इसी बात को स्पष्ट करते हुए प्रत्यभिज्ञाहृदयम् में लिखा है कि शक्तियों के संकुचित होने पर पशुभाव की प्रतीति होती है और शक्तियों के विकसित होने पर शिवभाव की अनुभूति होती है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कश्मीर शैवदर्शन में शिव और आत्मा को मूलतः एक ही तत्त्व माना गया है। शिव ही स्वेच्छावश पशुभाव को ग्रहण करता है। जिस प्रकार एक सामान्य व्यक्ति और योगी में मुख्य रूप से यही अन्तर होता है कि सामान्य व्यक्ति

अपनी आत्मशक्ति के प्रभाव को न जानता हुआ अपने आपको सीमित व्यक्तित्व वाला मानते हुये संसार की अमुक वस्तु की प्राप्ति में अथवा अप्राप्ति में क्रमशः सुख-दुःख आदि का अनुभव करता हुआ संसार के चक्र में घूमता रहता है, दूसरी ओर एक योगी जिसने अपनी आत्मा की चिदानन्द, इच्छा ज्ञान और क्रिया शक्तियों को अनुभूत कर लिया है, वह ईश्वर स्वरूप ही हो जाता है और यही ज्ञान प्रत्यभिज्ञा कहलाता है। अतः आत्मा के वास्तविक गुणों की पहचान के लिए प्रत्यभिज्ञा आवश्यक है, जिसके माध्यम से सामान्य जन भी अपनी आत्मा के वास्तविक गुणों को पहचान कर परमसत्ताकी अनुभूति करने योग्य हो जाता है अर्थात् आत्मा के वास्तविक गुणों की पहचान ही प्रत्यभिज्ञा है। प्रत्यभिज्ञा के द्वारा पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर आत्मा इस तथ्य को जानकर पुनः शिवरूप में प्रकाशित हो जाता है।

इस प्रकार संक्षेप में हम यही कह सकते हैं कि किसी कार्य की उत्पत्ति पर सुख-दुःख की अनुभूति अनुभव कहलाता है। यह द्रष्टव्य नहीं होता और वर्तमान के साथ-साथ भविष्यकाल में भी विद्यमान रहता है और ऐसा ज्ञान स्मृति कहलाता है। अतः स्मृति भूतकाल और वर्तमान काल से सम्बन्धित रहती है। जो अनुभूत वस्तु के मानसिक व्यापार का विषय बनता है, किन्तु वस्तु अविद्यमान रहती है। अपोहन के द्वारा वस्तुओं का पार्थक्य किया जाता है और यह वर्तमानकालिक होता है। प्रत्यभिज्ञा भी भूतकाल और वर्तमान काल से सम्बन्ध रखती है। परन्तु इसमें वस्तु के साथ-साथ उसका ज्ञान भी विद्यमान रहता है।



Ishwar Ashram Trust

(Founded by Ishwarswaroop Swami Lakshman Joo Maharaj)

- Guptganga, Ishber (Nishat) - 191021 (Kashmir)
- 2-Mohinder Nagar, Canal Road, Jammu - 180016
- 5-R/D Sarita Vihar, New Delhi - 110044

CALENDAR OF FESTIVALS & RITUALS 2004-05

From September 2004 to 1st April 2005

2004

29th Sept.	Wednesday	Pitrapaksh Jagh Swami Mehtab Kak Ji Maharaj
1st October	Friday	Pitrapakh Jagh Sushri Sharika Devi Ji
2nd October	Saturday	(Nirvan Jayanti) Yearly Jagh of HH Ishwarswaroop Swami Lakshman Joo Maharaj
12th October	Tuesday	Pitrapaksh Jagh Swami Ramji Maharaj
16th Nov.	Tuesday	Janma Jayanti Swami Mehtab Kak Ji Maharaj
13th Dec.	Monday	Janma Jayanti Sushri Sharika Devi Ji

2005

7th January	Friday	Janma Jayanti Swami Ramji Maharaj
7th February	Monday	Annual Jagh Swami Ramji Maharaj & Shiva Chaturdashi
26th Feb.	Saturday	Annual Jagh Sushri Sharika Devi Ji
8th March	Tuesday	Maha Shivaratri
11th March	Friday	Annual Jagh Swami Mehtab Kak Ji Maharaj

Published for General Information

(I. K. Raina)
Trustee / Secretary
Ishwar Ashram Trust



हमारे त्योहारों और पर्वों की सारणी

सितम्बर 2004 से 2005 अप्रैल तक

2004

२९ सितम्बर	बुधवार	स्वामी महताब काक जी महाराज का पितृपक्ष यज्ञ
१ अक्टूबर	शुक्रवार	सुश्री शारिका देवी जी का पितृपक्ष यज्ञ
२ अक्टूबर	शनिवार	वार्षिक निर्वाण जयन्ती यज्ञ ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्ष्मण जी महाराज का।
१२ अक्टूबर	मंगलवार	पितृपक्ष यज्ञ स्वामी राम जी महाराज
१६ नवम्बर	मंगलवार	जन्मजयन्ती स्वामी महताब काक जी महाराज
१३ दिसम्बर	सोमवार	जन्मजयन्ती सुश्री शारिकादेवी जी

2005

७ जनवरी	शक्रवार	जन्म जयन्ती दिवस स्वामी राम जी महाराज
७ फरवरी	सोमवार	वार्षिक यज्ञ स्वामी राम जी महाराज तथा शिव चतुर्दशी व्रत
२६ फरवरी	शनिवार	सुश्री शारिका देवी जी वार्षिक यज्ञ
८ मार्च	मंगलवार	महाशिवरात्रि
११ मार्च	शुक्रवार	वार्षिक यज्ञ स्वामी महताब काक जी महाराज

(इन्द्रकृष्ण रैना)

ट्रस्टी / सक्रेट्री

ईश्वर आश्रम ट्रस्ट





ISHWAR ASHRAM TRUST

(FOUNDED BY SRI ISHWAR SWAROOP SWAMI LAKSHMAN JOO MAHARAJ)

Srinagar Ashram:

Ishber Nishat.
P.O. Brain,
Srinagar (Kashmir)-190 021
Tel. : 0194-2461657

Jammu Ashram:

2, Mohinder Nagar,
Canal Road,
Jammu (Tawi)-180 016
Tel. : 0191-2501199, 2555755

Delhi Ashram:

R-5, Pocket 'D',
Sarita Vihar,
New Delhi-110 044
Tel. : 011-26958308, 26974977

(1)

Jammu

No.:IAT/1152/cont./04

8th Feb., 2004

To,

Shri Inder Krishen Raina

Secy., Ishwar Ashram Trust, Jammu.

My dear Raina Sahib,

The Whole of the Guru Parivar was shocked to learn about the sad demise of Shrimati Roopavati ji Dhar, your Mother-in-law, who was a very noble soul and very much devoted to Gurudev Ji Maharaj.

It is prayed that Shri Guru Maharaj may Bliss her soul and give strength to you and her family to bear this loss. May Gurudev uplift her soul by leading it to the region of light to which it just entered.

(B. N. Kaul)

Trustee

(2)

No.:IAT/1179/cond./04

18th April, 2004

The Whole of the Guru Parivar was shocked to learn about the sad demise of Shrimati Khema Jee Thusu wife of Late Shri A.N. Thusu, an ardent devotee of Gurudev Ishwar Swaroop Ji Maharaj, which had taken place on 17th of April, 2004

(48)

After recitation of routine Guru-Pooja, they observed silence for two minutes and prayed to Guru-Maharaj to bestow peace to the departed soul and lead it to the region of Light and Bliss to which it just entered, and give enough strength to her family to bear this loss.

(B. N. Kaul)

Trustee

(3)

Jammu

25th May, 2004

Whole of the Guru parivar was shocked to learn about the sad demise of Smt. Kamalavati Bhaghati. She was one of the closest devout devotees of beloved Guru Dev Ji Maharaj.

After sitting in silence for two minutes, the parivar prayed to Guru Dev to bestow his bliss to the departed soul and to lead it to the region of light to which it has just entered, also to give enough courage to her children to bear this great loss.

It was also desired that these sentiments may be made known to her kith and kin.

(B. N. Koul)

Trustee

(4)

No: IAT/Adm/1199/04

Jammu

June 1, 2004

Whole of the Guru-Parivar was shocked to learn about the sudden demise of Shrimati Krishan Rani Ganahar, an ardent devotee of our Guru Dev, whom he used to call Maharein with love. Not only was she a noble lady with love for all, but she was the better-half of a noble soul of high order, viz. Late Shri Krishan Joo Ganahar, a very close devotee of Swami ji Maharaj.

The Guru-parivar prays to beloved Swami ji Maharaj to lead the departed soul to the region of light to which it has just entered and bestow tremendous courage to the children of the departed soul so as to bear this

great loss.

It also desires to convey these sentiments to the bereaved family.

(B. N. Koul)

Trustee

(5)

No: IAT/1202.Cond/2004

Jammu

25th July, 2004

Whole of the Guru Parivar was shocked to learn about the sad demise of Shri Somnath Ji Zutshi, one of the ardent and closest devotees of our beloved Guru Maharaj, a few days back at Delhi.

After sitting in silence for two minutes the parivar prayed to Shri Ishwar Swaroop ji Maharaj to bestow his bliss to the departed soul and lead it to the region of light to which it has just entered and to give enough courage to the family members to bear this great loss.

It was also desired that these sentiments be conveyed to his children.

For & on behalf of The Trust

I. K. Raina

Trustee/Secretary

(6)

No: IAT/1209-10/Cond/04

Jammu

22nd August, 2004

Whole of the Guru-Parivar, on hearing about the death of Shrimati Lalita Ji Warikoo, a very close disciple of the inner circle of Swami Ji Maharaj, sat in silence and prayed to Gurudev to lead the departed soul to the region of light and Bliss to which it has just entered and free it from the bondage of cycle of death and births.

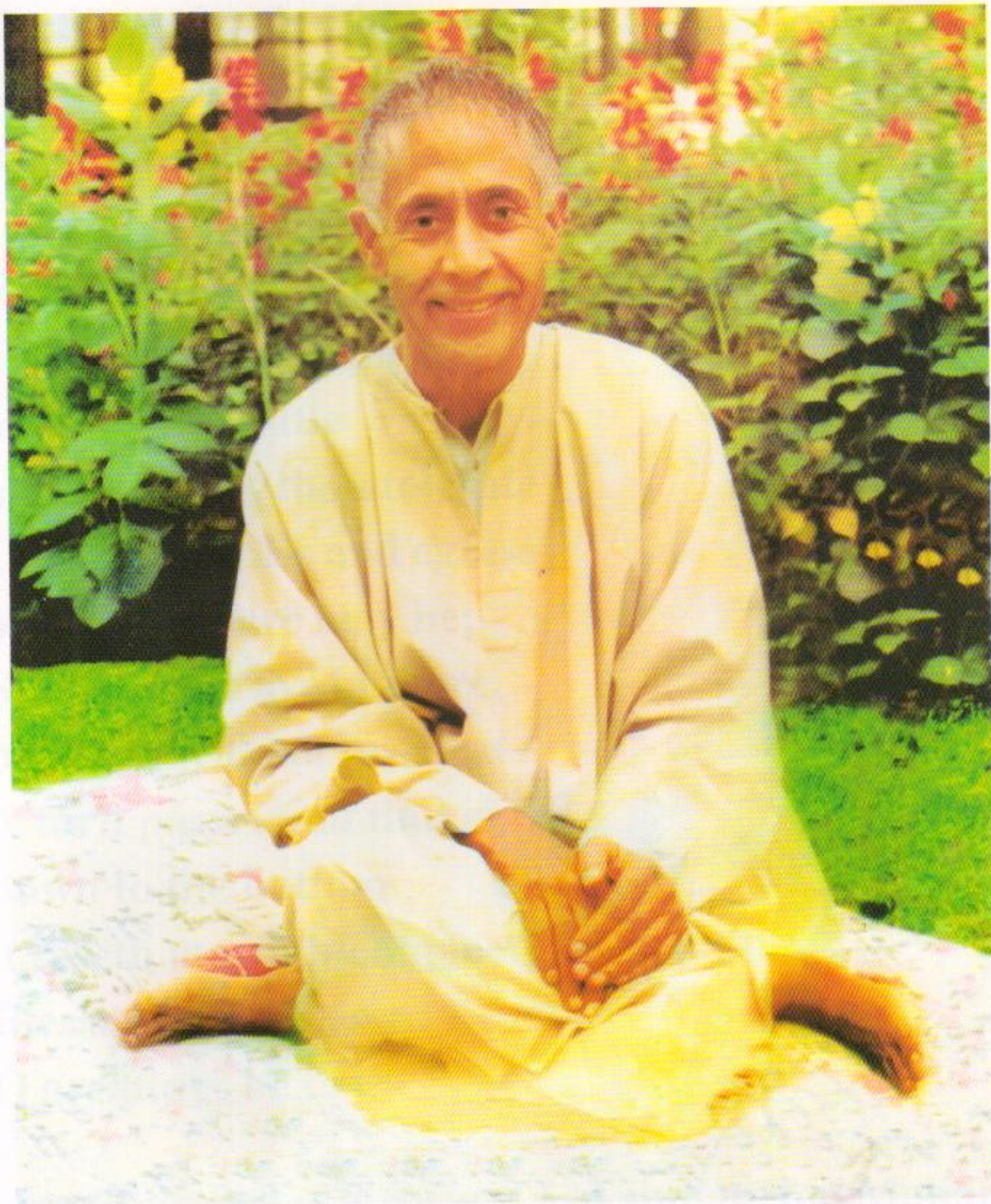
They also prayed that Guru Maharaj may bestow courage to the kith and kin of the departed Soul to bear this great loss, and desired to convey these sentiments to the family members of the deceased.

(B. N. Koul)

Trustee

(50)

श्री ईश्वरस्वरूप लक्ष्मण जू महाराज



आविर्भावदिवस
9-5-1907

महासमाधिदिवस
27-9-1991

(7)

No: IAT/1215-16/Cond/04

Jammu

29th August, 2004

The untimely demise of Shri Hari Krishen Ji Raina on 24th August, 2004, a devout devotee and disciple of our Guru Maharaj, was received with great shock by whole of the Guru Parivar.

The Parivar prayed to Guru Maharaj, Swami Laxman Joo, to shower his Bliss to the departed soul and lead it to the region of solace and peace to which it has just entered, and also to give enough courage to the family of the deceased to bear this great loss.

It was desired that these sentiments be conveyed to the kith and kin of the departed soul.

(B. N. Koul)

Trustee

(8)

No: IAT/1218-19/Cond/04

Jammu

29th August, 2004 June 1, 2004

Whole of the Guru-Parivar was shocked to learn about the sad demise of Shrimati Leelawati Bhat M/o Shri Brij Lal Bhat, 4-Mahinder Nagar, Jammu, on 27th instant. The deceased was an ardent devotee of Guru Dev and a regular attendant of Sunday classes.

Guru Parivar prayed to Gurudev to bestow peace and bliss to the departed soul and lead it to the region of light to which it has just entered and to give strength and courage to the bereaved family to bear this great loss.

(B. N. Koul)

Trustee

N.B. : Similar condolence meetings were held on the stipulated dates at Srinagar and Delhi Ashrams also and two minutes silence was observed for the upliftment of departed souls. May Sadguru Maharaj bestow eternal peace and relieve them from the pangs of life and death.

(51)



ISHWAR ASHRAM TRUST

(FOUNDED BY SRI ISHWAR SWAROOP SWAMI LAKSHMAN JOO MAHARAJ)

Jammu

30-8-2004

OFFICE ORDER

In pursuance of the discussion held by the undersigned with Shri Brij Nath Kaul, Trustee, with regard to the smooth working and functioning of Jammu Kendra, as also to involve almost every devotee of Swami Ji Maharaj in the activities being held at Jammu, constitution of a committee is hereby ordered as under:-

1. Shri Pushkar Nath Qasid Convenor
2. Dr. Shadi Lal Munshi Co-convenor
3. Shri Bhusan Lal Bhat Maintenance of the premises,
& welfare
4. Shri Makhan Lal Muju Incharge Tilak
5. Shri C.M. Dhar Fund raising
6. Shri Ram Ji Bakhshi - do -
7. Shri Raj Nath Tikoo Fund raising & festivals
8. Shri B. L. Bhat Fund raising & festivals
9. Smt. Somavati Saproo Festivals, prasad distribution.
10. Smt. Prabhavati Warikoo -do-
11. Sushri Tosha Ji Raina -do-
12. Sushri Shibini Raina -do-

- | | |
|---------------------------|------|
| 13. Sushri Gudi Gassi | -do- |
| 14. Sushri Girija Bhat | -do- |
| 15. Sushri Titli Kak | -do- |
| 16. Sushri Ritu Kaul | -do- |
| 17. Sushri Ratni Talashi | -do- |
| 18. Sushri Mana Muju | -do- |
| 19. Sushri Promila Dhar | -do- |
| 20. Sushri Krishna Razdan | -do- |
| 21. Sushri Rama Bakshi | -do- |
| 22. Shri Rajinder Tikoo | -do- |
| 23. Shri Miskeen | -do- |

and any other devotee whom the convenor may deem fit.

The office order dated September 1, 2003 with regard to the working of the administrative office will remain intact with the following amendments:-

1. Shri Vijay Kumar Bakshi, who is incharge of maintenace of records, stock and distribution of Malini will also be responsible for maintenance of Library and reference books. For this purpose he shall maintain necessary stock/library registers.
2. Shri M.L. Muju will assisst the office in filing of papers and correspondence.
3. Shri S.N. Saproo will be wholly incharge of the office administration and supervision.

Jai Gurudev

Sd/-
(I. K. Raina)
Secretary / Trustee



ISHWAR ASHRAM TRUST

(FOUNDED BY SRI ISHWAR SWAROOP SWAMI LAKSHMAN JOO MAHARAJ)

Delhi

15.7.04 & 12.9.04

OFFICE ORDER

In the interest of smooth functioning of the Delhi chapter, the Management Committee of the Delhi Kendra of Ishwar Ashram Trust is reconstituted as under

<u>Name</u>	<u>Function Area</u>
1. Shri Ram Krishen Sadhu	Convener
2. Shri M. L. Razdan	Co-convener
3. Shri J. L. Bhat	Fund Raising Liaison & Publicity
4. Shri C. L. Mirakhur	Puja, Festivals & Welfare
5. Shri B. L. Kachroo	Maintenance Bills, Security
6. Shri M. L. Qazi	Legal Matters
7. Shri Devinder Munshi	Construction, Maintenance
8. Smt. Asha Dhar	Festivals, Welfare & Prasad Distribution
9. Smt. Pyari Kher	Festivals, Welfare & Prasad Distribution.
10. Shri Brij Mohan	Secretarial Work, Accounts, Stocks & Sale of Books
11. Smt. Jiga Ji	Festivals, Welfare & Prasad Distribution
12. Smt. Anjana Dhar	Centenary Celebrations and such functions as may be allotted by the Convener
13. Shri P. N. Raina	
14. Shri Sevajee Munshi	
15. Smt. Sheela Jee Munshi	
16. Shri R. L. Peer	
17. Dr. Anusheel Munshi	
18. Shri Subodh Muku	
19. Smt. Ruhi Raina	

Sd/-

I. K. Raina

Secretary / Trustee
Ishwar Ashram Trust



श्री ईश्वर-स्वरूप
स्वामी लक्ष्मणजी महाराज
के समाधिदिवस पर
स्तुतिपाठानुक्रमणिका

१. श्री बहुरूपगर्भस्तोत्रम्
२. श्री गणेशस्तवराजः
३. श्री साम्बपञ्चाशिका
४. श्री मकुन्दमाला
५. श्री शिवस्तोत्रावली (त्रयोदशं च चतुर्दशं स्तोत्रद्वयम्)
६. श्री रुद्रमन्त्रचमकानुवाक्यम्
७. श्री पञ्चस्तवी (द्वितीयस्तवः तथा चतुर्थस्तवः)
८. श्रीमद्भगवद्गीता (अष्टमो, नवमो तथा पञ्चदशोऽध्यायः)
९. श्रीभैरवस्तुतिः
१०. आरती
११. श्री बहुरूपगर्भस्तोत्रम्

ईश्वरआश्रम ट्रस्ट
श्रीनगर-जम्मू - दिल्ली

THE MATRIKA MALINI

A Quarterly Periodical from Ishwar Ashram Trust, Srinagar

Subscription Form

Please Enroll me as a Subscriber to the Matrika Malini

(Subscription Rates for India)

☐ 4 Issues Rs. 100/- ☐ 8 Issues Rs. 200/- ☐ 12 Issues Rs. 300/-

(Subscription Rates for Rest of the World)

☐ 4 Issues \$ 25/- ☐ 8 Issues \$ 50/- ☐ 12 Issues \$ 75/-

Name _____

Address (In Capitals) _____

_____ Pin _____

Phones (R) _____ (O) _____

Cheque / DD/ Cash (No.) _____ Date _____

Bank _____ Amount _____

Note:

Signature

- (i) Cheques/DD to be drawn in favour of Ishwar Ashram Trust, 2, Mahinder Nagar, Canal Road, Jammu - 180 016. Tel.: (0191) 2501199, 2555755
- (ii) All correspondence to be addressed to the Administrative Office, 2, Mahinder Nagar, Canal Road, Jammu or The Editor, Matrika Malini, Ishwar Ashram Bhavan, R-5, Pocket D, Sarita Vihar, New Delhi - 110 044 Tel. : (011) 26958308, 26974977, 26943307

Advertise in Malini and Effectively Reach out to the World.

Donations:

Front Inside Full Page (Colour)	Rs. 3000/-	Per insertion
Back Inside Full Page (Colour)	Rs. 2000/-	
Inside Full page (B & W)	Rs. 1000/-	
Sponsoring Pages (B & W)	Rs. 500/-	